ISSN 2456-4818

अक्तूबर-दिसंबर -2018

वर्ष-50 अंक - 4

मूल्य ₹ 20

वैज्ञानिक

वैज्ञानिक

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र के सौजन्य से प्रकाशित

हिन्दी विज्ञान साहित्य की अविरल यात्रा

स्मृति शेष : प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी

जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान

पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी भले ही अब हमारे बीच नहीं है लेकिन उनका खास अंदाज शायद ही कोई भूल पाएगा. अपनी खास भाषण शैली, कविताओं के साथ-साथ मनमोहक मुस्कान के लिए पहचाने जाने वाले अटल बिहारी वाजपेयी कड़े फैसले लेने के लिए भी विख्यात थे. इसका सबसे बड़ा उदाहरण 1998 में उस समय देखने को मिला, उन्होंने केंद्र की सत्ता संभालते ही एक ऐसा फैसला लिया जिसने देश ही नहीं पूरी दुनिया को हिलाकर रख दिया.उन्होंने अपने कार्यकाल के दौरान न केवल परमाणु परीक्षण को हरी झंडी दी, बल्कि इसे सफल बनाकर भारत को परमाणु संपन्न राष्ट्र बनाने में अहम रोल भी निभाया. अटल बिहारी वाजपेयी के इस सपने को पूर्ण रूप देने में पूर्व राष्ट्रपति और 'मिसाइल मैन' ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने खास भूमिका निभाई.

अटल बिहारी वाजपेयी, 19 मार्च 1998 को दूसरी बार प्रधानमंत्री की कुर्सी पर बैठे, हालांकि वो जिस सरकार का नेतृत्व कर रहे थे वो एक गठबंधन की सरकार थी. इस सरकार में कई क्षेत्रीय पार्टियां शामिल थीं. गठबंधन की सरकार होने की वजह से परमाणु परीक्षण का फैसला आसान नहीं था, बावजूद इसके उन्होंने बिना कोई देर किए इस फैसले को रजामंदी दे दी. 11 मई 1998, यही वो दिन था जब राजस्थान के पोखरण में एक के बाद एक तीन परमाणु बमों के सफल परीक्षण के साथ भारत न्यूक्लियर पॉवर बन गया. 1 मई 1998 को हुए परमाणु परीक्षण का पूरा कार्यक्रम बेहद गोपनीय रखा गया. भारत ने परमाणु परीक्षण को सफल बनाने के लिए भारतीय सेना की मदद ली और सेना की 58 इंजीनियरिंग रेजीमेंट इस परीक्षण का हिस्सा बनी थी. केंद्र में वाजपेयी की सरकार बने सिर्फ तीन माह हुए थे और हर कोई इस बात को जानकर हैरान था कि सिर्फ तीन माह के अंदर अटल बिहारी वाजपेयी ने इतना बड़ा कदम उठा लिया.

'मिसाइलमैन' एपीजे अब्दुल कलाम ने इस परमाणु कार्यक्रम को सफल बनाने में अहम योगदान दिया. प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने इस पूरे कार्यक्रम की कमान श्री कलाम को सौंपी थी, जो उस समय डीआरडीओ के अध्यक्ष थे.

पोखरण-2 परमाणु परीक्षण के बाद सफलता की मुस्कान के साथ श्री अटल बिहारी वाजपेयी, श्री जॉर्ज फर्नांडिस, वैज्ञानिक डॉ. अब्दुल कलाम और डॉ. आर. चिदंबरम

चंद्रयान -1

अंतरिक्ष में परिक्रमा करता चंद्रयान

परमाणु धमाके की गूंज

प्रस्तुतिःअश्विनीकुमार मिश्र

वैज्ञानिक

वर्ष - 50 अंक - 4

अक्तूबर-दिसंबर 2018

♦ मुख्य सम्पादक ♦

श्री मनीष कुमार

♦ सम्पादन मंडल ♦

श्री राजेश कुमार मिश्र
श्री विपुल सेन
डॉ. संजय पाठक
श्री अनिल कुमार
श्री प्रवीण दुबे

♦ मुख्य व्यवस्थापक ♦

श्री दीनानाथ सिंह

♦ व्यवस्थापन मंडल ♦

श्री संजय गोस्वामी
श्री कपिलदेव प्रसाद अम्बष्ठ
श्री राजीव गुप्ता
श्री योगेंद्र सिंह

सदस्यता शुल्क आजीवन

व्यक्तिगत : रु.1000
संस्थागत : रु.2000

भुगतान हेतु स्टेट बैंक आफ इंडिया खाता संख्या : 34185199589 IFS code : SBIN0001268
कृते : हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद'
Pay to : Hindi Vigyan Sahitya Parishad
कृपया सदस्यता हेतु ई-भुगतान की रसीद अथवा चेक भुगतान अपने पूरे पते के साथ व्यवस्थापक के पते पर भेजें.
अकाऊंट नंबर- SBI 34185199589

कार्यालय

'वैज्ञानिक', हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेंट्रल कांप्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्राम्बे, मुंबई-400 085
Email : sampadakvaigyanik@gmail.com
cc: hvsp@barc.gov.in

सभी पद अवैतनिक हैं

'वैज्ञानिक' में छपे लेखों का दायित्व लेखकों का है.

मूल्य : 20 रुपये

अनुक्रमणिका

1.सम्पादकीय - 5

लेख

2. कणकीय द्रव्यों का मिश्रण एवं पृथक्करण
- सिद्धनाथ उपाध्याय - 7

3. भविष्य की डिज़ाइनर फसलें और खाद्य सुरक्षा
- प्रज्ञा गौतम - 13

4. सौर पी.वी.आधारित पावर संयंत्र
- आर.के. वर्मा, बी.आर. पटनायक, पी.के. पांडा,
- एस.के. कौल, एच. मिश्रा - 16

5. कैसे देखते हैं, हम
- डॉ. प्रेमचंद्र स्वर्णकार - 19

6. राष्ट्र सेवा में अंतरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी
- वाई.के. दीक्षित - 25

7. परमाणु रचना के प्रति चिंतन
- डॉ.विजय कुमार भार्गव - 31

8. मैगलेव ट्रेन - चले पवन की चाल
- विनीता सिंघल - 33

9. स्वास्थ्य को प्रभावित करती मधुमेह
- डॉ. दया शंकर त्रिपाठी - 37

10. खानपान में मिलावट स्वास्थ्य के लिए बड़ी चुनौती
- डॉ. मनीष मोहन गोरे - 41

11. एक नये ज्यामितीय आकार की खोजः स्कूटाएड
- अमिताभ प्रेमचन्द्र - 45

12. ब्रह्मांड विज्ञान के अन्यतम अध्येताः स्टीफ़न हॉकिंग
- मंजुलिका लक्ष्मी - 50

कविता :

1. **बल है सर्वस्त्र** - संजय गोस्वामी - 15
2. **विज्ञान का एक क्षेत्र - सूक्ष्मदर्शी** - प्रवीण तँवर - 57

विज्ञान समाचार - संजय गोस्वामी - 59

1. युरोपा में वैज्ञानिकों की रुचि
2. सूर्य की रोशनी से ईंधन
3. कचरे से साफ हो सकेगा प्रदूषित जल
4. स्मार्टफोन से कैंसर का खतरा
5. देश की पहली कृत्रिम हृदय वाल्व
6. एम-डीएनए वाईजश् नाम से एक स्वास्थ्य सेवा
7. ऊर्जा का स्रोत है कार्बनडाईऑक्साइड

विज्ञान वर्ग पहेली - 11

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद

कार्यालय : हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, सूचना प्रभाग,
सेंट्रल कॉम्प्लेक्स, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई - 400085
वेबसाइट : www.hvsp.co.in

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2019

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद द्वारा आयोजित डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2019 हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित है. लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिये. लेख का अप्रकाशित होना अनिवार्य है. मूल्यांकन में मौलिक जानकारी के साथ-साथ रेखाचित्रों, फोटोग्राफ, तालिकाओं इत्यादि को समुचित महत्व दिया जाता है. चित्रों को अलग से सफेद कागज / ट्रेसिंग पेपर पर काले पेन से बनायें. फोटोग्राफ ब्लैक एंड व्हाइट हो तो उचित रहेगा. इन्हे लेख के अंत में संलग्न कर दें. नीचे दिए गए पते पर कृपया टंकित अथवा स्पष्ट हस्तलिखित प्रति (लगभग 3000-4000 शब्द) भेंजें. लेख पी.डी.एफ. अथवा वर्ड फाईल (यूनीकोड या कृतिदेव) में ई-मेल द्वारा भी निम्नलिखित पते पर भेजे जा सकते हैं.

अंतिम तिथि : 31 अक्तूबर, 2019

पुरस्कार

प्रथम	-	रु. 8,000/-
द्वितीय	-	रु. 6,000/-
तृतीय	-	रु. 4,000/-
प्रोत्साहन पुरस्कार (4)	-	रु. 3,000/- प्रत्येक

(जिसमें अहिंदी वर्ग के लिए एक)

लेख भेजने का पता

श्री दीनानाथ सिंह
संयोजक - लेख प्रतियोगिता
सचिव, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
एनआरपीएसईडी, एनआरबी,
कमरा नं. 206, ओटीएफ, पीपी परिसर,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
मुंबई- 400085
ईमेल - dnsingh@barc.gov.in

श्री संजय गोस्वामी
कार्यकारी सदस्य
हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद
एनआरबी, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई-400 094
ईमेल - goswamis@barc.gov.in
दूरभाष - 022-25597977

कार्यकारिणी समिति

संरक्षक : डॉ.ए.के.मोहंती, निदेशक, भा.प.अ.के.,
अध्यक्ष : **कवींद्र पाठक,** उपाध्यक्ष : **राजेश कुमार मिश्रा,** सचिव : **दीनानाथ सिंह,** सह-सचिव : **प्रदीप कुमार रामटेके,**
कोषाध्यक्ष : **मुकेश चंद गोयल,** संयुक्त-कोषाध्यक्ष : **नवीन चन्द्र शर्मा,**
सदस्य : विपुल सेन ,संजय गोस्वामी, राजेश कुमार, राजेश मिश्रा, अनिल अहिरवार,
आर.पी. कुशवाहा, प्रवीण दुबे, डॉ. कुलवंत सिंह, मुख्य संपादक, वैज्ञानिक : **मनीष कुमार,**
पदेन सदस्य : **नरसिंह राम,** संयुक्त सचिव, रा.भा.का.स.

सम्पादकीय

मुझे वैज्ञानिक त्रैमासिक पत्रिका (1969-2018) के स्वर्ण जयंती वर्ष के अंतिम अंक का सम्पादन करते हुए अपार हर्ष का अनुभव प्राप्त हो रहा है. जैसा कि आप अवगत है कि वैज्ञानिक पत्रिका का प्रकाशन वर्ष 1969 में प्रारम्भ हुआ था और तबसे अनवरत इसमें विभिन्न विषयों पर लेख छपते आ रहे हैं. पत्रिका के प्रकाशन के आरम्भिक वर्षों में इसे एवं इससे जुड़े लोगों को काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा. लेकिन पाठकों, लेखकों एवं पत्रिका से जुड़े कार्यकर्ताओं के अमूल्य योगदान से आज हम इसके प्रकाशन की पचासवीं वर्षगांठ मना रहे हैं.

हमारे इस स्वर्ण जयंती वर्ष 2018 के प्रथम संयुक्तांक को महान ब्रह्माण्ड वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिंस की याद में समर्पित किया गया था. उनके इसी स्मृति की कड़ी में स्वर्ण जयंती वर्ष के इस अंतिम अंक में मंजुलिका लक्ष्मी द्वारा लिखित 'ब्रह्माण्ड विज्ञान के अन्यतम अध्येता' को प्रकाशित किया जा रहा है.

अप्रैल जून 1980 (वर्ष 12, अंक 2) में हमारे सम्पादक महोदय ने निर्णय लिया था कि हर वर्ष वैज्ञानिक के अंतिम अंक में उस वर्ष के लेखों की पूर्ण सूची छपा करेगी, ताकि संदर्भ के रूप में इस जानकारी का उपयोग लेखकों व पाठकों के लिए सम्भव हो सके. उन्होंने उस समय तक छपे लेखों की पूर्ण सूची तीन अंकों में प्रकाशित भी किया था. तदुपरांत हमारे अन्य स्वयंसेवियों के अथक प्रयास से वैज्ञानिक की उपलब्ध प्रतियों को पीडीएफ प्रारूप में अपलोड किया गया, जो पाठकों के लिये भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के वेब साइट के हिंदी संस्करण 'barc.gov.in/hindi/publication/' पर उपलब्ध है. हमारा प्रयास रहेगा कि आपके सहयोग से वैज्ञानिक पत्रिका की अन्य प्रतियों को भी इसी प्रकार उपलब्ध कराया जा सके और आने बाले वर्षों में लेखों की सूची भी छापी जाए. इस हेतु आप सभी सुधि पाठकों से अनुरोध है कि वैज्ञानिक की वो सभी प्रतियाँ जो उपर्युक्त वेब साइट पर उपलब्ध नहीं है, उसे उपलब्ध कराने में हमारी सहायता करें.

विज्ञान और तकनीकी के सतत विकास ने जहाँ एक ओर हमें असीम सुविधाएँ प्रदान की है, वहीं दूसरी ओर हमें इसका गुलाम भी बना दिया है. पचास वर्षों से अनवरत प्रकाशित हो रही हमारी यह

वैज्ञानिक पत्रिका भी इस गुलामी से अछूती न रह पायी. लेखों की मौलिकता एवं भाषा की सुगमता ही लेख को उत्कृष्ट बनाती है. परंतु आज के गुगल युग में इस मापदंड का संयमित ढंग से पालन करना दिन प्रति दिन कठिन होता जा रहा है, जिसका सीधा असर हमारे लेखों में भी दिखने लगा है और अति तो तब हो जाती है जब हम उसे शतप्रतिशत छपने हेतु बिना किसी संदर्भ के भेज देते हैं. इसलिए लेखकों से विशेष अनुरोध है कि वो लेख को अपनी भाषा में लिखकर भेजें और अगर जरुरत पड़े तो 'वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग' द्वारा स्वीकृत शब्दावली के सिद्धांत के अनुसार अंग्रेजी एवं अन्य शब्दों का हिंदी पर्याय मान्य तकनीकी शब्दावली के सहयोग से ही प्राप्त करें.

हमारे पूर्व सम्पादक महोदय डॉ. सत्यनारायण त्रिपाठी जी ने वैज्ञानिक जनवरी मार्च 1987 के सम्पादकीय में संविधान के 42 वें संशोधन को उद्धृत करते हुए वैज्ञानिक प्रवृति के विकास और उसे दैनिक जीवन में अपनाने पर जोर दिया था. आज 31 वर्ष बाद भी उनका सम्पादकीय प्रासंगिक है और एक पाठक या लेखक के रूप में इसका पालन हमारे लिए अपेक्षित है. समय के साथ इस पत्रिका के गुणवत्ता में भी काफी उतार चढ़ाव आया है और आता रहेगा. हमें तो बस अपने प्रयास में अविचल खड़ा रहना है. कवि सोहनलाल द्विवेदी के शब्दों में '..... खड़े रहो तुम अविचल होकर सब संकट तूफानी में. ..... अचल रहा जो अपने पथ पर लाख मुसीबत आने में, मिली सफलता जग में उसको जीने में मर जाने में.'

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि पाठकों एवं लेखकों का योगदान ही किसी पत्रिका के लिए उसके सतत जीवन हेतु पोषक तत्व का कार्य कर सकती है. अतः हमारा पाठकों से विशेष अनुरोध है कि वे इस पत्रिका के पठन पाठन के साथ साथ अपनी प्रतिक्रियायें भी भेजें और अपने लेखों के माध्यम से बढ़ चढ़ कर अपना सक्रिय योगदान प्रदान करें.

इस अंक में हमने भारतीय वैज्ञानिक डॉ. जगदीश चंद्र बोस (30 नवम्बर 1858 - 23 नवम्बर 1937) के सम्मान में विज्ञान के क्षेत्र में उनकी उपलब्धियों की संक्षिप्त जानकारी को समाहित किया है. जैसा कि आप सभी को विदित है कि 2018 में ही हमारे पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी जी (25 दिसम्बर 1924 - 16 अगस्त 2018) का निधन हो गया. उन्होंने अपने प्रधानमंत्री के कार्यकाल में विज्ञान के विस्तार और प्रसार के लिए कई ठोस निर्णय लिए. इसमें पोखरण का दूसरा परमाणु परीक्षण एक मील का पत्थर है. भारत की इस उपलब्धि का लोहा पूरे विश्व ने माना. उन्होंने जय जवान, जय किसान के साथ जय विज्ञान को जोड़कर विज्ञान के प्रति अपनी निष्ठा को नारे के रुप में जन जन तक पहुंचाया. उनके योगदानों का स्मरण करते हुए हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद ने उनकी स्मृति को नमन किया है. 50 वर्ष की यात्रा को पूरा करते हुए वैज्ञानिक की टीम इसे और भी सूचनाप्रद बनाने के लिए प्रयासरत है.

- मनीष

कणकीय द्रव्यों का मिश्रण एवं पृथक्करण

सिद्धनाथ उपाध्याय
एमेरिटस प्रोफेसर
रासायनिक अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी विभाग
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (काहिविवि) वाराणसी
वाराणसी-221005, उत्तर प्रदेश, भारत
ई-मेल : snupadhyay.che@itbhu.ac.in

प्रकृति में विभिन्न आकार तथा घनत्व के खनिजों के कण विसरित मिश्रण के रूप में पाए जाते हैं - जैसे कोयले में सिलिकेट द्रव्य, खनिज-रेत में भारी खनिजें, मृदा में बाक्साईट आदि. कई भू-भौतिकीय क्रियाओं में भी कणकीय द्रव्य महत्वपूर्ण योगदान करते हैं. अलग-अलग गुणधर्म वाले द्रव्यों की कणिकाओं के मिश्रण का व्यापक उपयोग हमारे दैनिक जीवन के साथ-साथ विभिन्न उद्योगों में भी होता है. औषधि, खाद्य एवं कृषि, रसायन, प्लास्टिक, सेरामिक, सौंदर्य-प्रसाधन, जैव-प्रौद्योगिकी, कोयला-खनन, खनिज-खनन आदि सभी उद्योगों की विभिन्न प्रक्रियाओं में प्रयोग किये जाने वाले ठोस द्रव्य बहुधा कणों के मिश्रण के रूप में होते हैं. ये कण मणिभीय, अमणिभीय, पत्तर (flakes), चूर्ण (powder), पेस्ट आदि रूपों में हो सकते हैं. उद्योग जगत में इनके व्यापक उपयोग का अंदाजा इससे भी लगाया जा सकता है कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था में ठोस कणकीय द्रव्यों पर आधारित उत्पादों का योगदान लगभग एक लाख करोड़ (ट्रिलियन) डालर से अधिक का है.

अक्सर यह देखा गया है कि कणकीय द्रव्यों के मिश्रण का जब स्थानांतरण किया जाता है अथवा उन्हें जब हिलाया-डुलाया जाता है तो उनके घटक कण आकार एवं घनत्व के आधार पर पृथक होने लगते हैं. ऐसा न होने पाये इसलिए इनके भण्डारण, परिवहन आदि के लिए उपयोग किए जाने वाले उपस्करों (apparatus) का अभिकल्पन करते समय विशेष ध्यान देना आवश्यक हो जाता है ताकि अंतिम उत्पाद की गुणवत्ता पर कणिकाओं के पृथक्करण के चलते कोई दुष्प्रभाव न पड़े. भू-प्रौद्योगिकी प्रयोगशाला में जांच के लिए लाये गए मृदा के कणकीय नमूनों की प्रवृत्ति अक्सर अलग-अलग आकार के कणों में पृथक होने की होती है. अतएव इन नमूनों की उचित देखभाल आवश्यक होती है. उपरोक्त उल्लिखित कई उद्योगों में कणों के आकार और घनत्व के आधार पर पृथक्करण कभी कभी लाभदायक भी होता है.

कणकीय द्रव्यों में मिश्रण : कणों के मिश्रण के बनने की परिस्थिति के आधार पर कणकीय द्रव्यों के मिश्रण आदर्श (ideal), यादृच्छिक (random) तथा वियोजनीय (seggregating) प्रकार के हो सकते हैं. दो अलग-अलग प्रकार के द्रव्यों के कणों के आदर्श मिश्रण के सम्पूर्ण अम्बार में दोनों द्रव्यों के कणों का प्रतिशत एक समान होता है. किसी भी स्थान से लिये गए मिश्रण के नमूने में भी दोनों कणों का वही प्रतिशत होता है जो मिश्रण के पूरे आयाम में होता है. व्यवहार में आदर्श मिश्रण प्राप्त नहीं किया जा सकता है. साधारणतया उद्देश्य यह होता है कि एक ऐसा यादृच्छिक मिश्रण प्राप्त किया जा सके जिसमें किसी एक प्रकार के कणों के उपस्थिति की संभावना सभी स्थानों पर एक जैसी हो और उसका प्रतिशत भी मिश्रण के संपूर्ण अम्बार के सामान ही हो. दो पृथक न होने की संभावना वाले कणों को मिलाने से सामान्यतया इसी प्रकार का मिश्रण प्राप्त किया जा सकता है. मिश्रित किये जानेवाले कणों के भौतिक गुणों में भिन्नता होने पर उनका पृथक्करण होता है और मिश्रण के अम्बार में किसी भी स्थान पर एक प्रकार के कणों के प्रतिशत के ज्यादा होने की संभावना अधिक होती है. चित्र 1 में

काली और सफेद गोलियों के माध्यम से बने आदर्श, यादृच्छिक और वियोजनीय मिश्रणों के चित्र दिखाए गए हैं. चित्र 1 (क) एक आदर्श मिश्रण का चित्र है. चित्र 1 (ख) में दिखाया गया यादृच्छिक मिश्रण सिक्के उछालने की चित-पट की प्रक्रिया द्वारा बनाया जा सकता है - चित आने पर काली और पट आने पर सफेद गोली रखी जाती है. चित्र 1 (ग) में दिखाया गया वियोजनीय मिश्रण लूडों के खेल के 'पासा फेंकने' की पद्धति से बनाया जा सकता है. इस पद्धति के द्वारा काली गोलियों की उस खास प्रकृति का इस्तेमाल किया जाता है, जिसके कारण वे सफेद गोलियों के मुकाबलें चित्र के निचले हिस्से में अधिक संख्या में एकत्र होगी. इस अवस्था में तीन में से दो अवसर ऐसा होगा जब गोलियां काली होंगी (पासे में 1, 2 अथवा 3 आने पर) जबकि तीन में से एक अवसर ऐसा होगा जब गोलियां सफेद होंगी (पासे में 4, 5 या 6 आने पर) जैसा कि चित्र के ऊपरी भाग में दिखाया गया है. कणों के नैसर्गिक आकर्षण बलों का लाभ लेते हुए यादृच्छिक मिश्रण से भी उत्तम मिश्रण 'व्यवस्थित मोल-जोल' अथवा 'पारस्परिक क्रिया' (interactive action) द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं.

दिया जाय तो मिश्रण के परिवहन, उसके उडेलने, उसे चलती पट्टी (कन्वेयर बेल्ट) द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने अथवा उनके परिष्करण के समय अगर उचित सावधानी न बरती जाय तो मिश्रण की कणिकाएं पृथक होने लगती हैं.

मिश्रण की कणिकाओं के आकार, घनत्व और स्वरूप में अंतर उनके पृथक होने की प्रक्रिया में योगदान करता हैं. इसके लिए इनके आकार का अंतर ही सबसे महत्वपूर्ण कारक है और घनत्व का अंतर अपेक्षाकृत कम. बालू के ढेर को हिलाने पर उसके नीचे रखी पत्थर अथवा लोहे की गोली का ऊपर जाना इसकी पुष्टि करता है. इस पृथक्कीकरण के चलते उत्पन्न होने वाली कई प्रकार की समस्याएं औद्योगिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करती हैं. अगर मिश्रण बनाये जाने वाले उपकरणों की सहायता से कणिकाओं का एक संतोषजनक और उत्तम मिश्रण बना भी लिया जाता है तो उसके रख-रखाव और आगे की प्रक्रियाओं में प्रयोग के दौरान उसके घटक अलग-अलग होने लगते हैं. इस पृथक्कीकरण के चलते ही अम्बार घनत्व में होने वाले परिवर्तन के कारण 50 किलोग्राम की क्षमता वाले थैले में रखे गए 50 किलोग्राम के

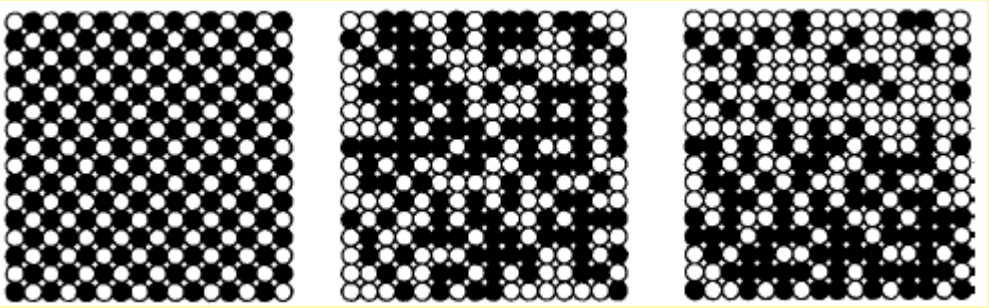

आदर्श मिश्रण
चित्र 1 : (क)

यादृच्छिक मिश्रण
चित्र 1 : (ख)

वियोजनीय मिश्रण
चित्र 1 : (ग)

चित्र 1 : मिश्रणों के प्रकार

पृथक्करण का कारण और प्रभाव : अगर दो मिलाये जाने वाली कणिकाओं के महत्वपूर्ण भौतिक गुण-धर्म (आकार और उसका बंटन, स्वरूप, घनत्व) एक समान होंगे तो उन्हें काफी अधिक समय तक मिश्रित करने से ही यादृच्छिक मिश्रण प्राप्त होगा. हालांकि बहुत सी सामान्य प्रक्रियाओं में मिश्रित की जाने वाली कणिकाएं अलग-अलग गुण-धर्म वाली होती हैं और उनकी प्रवृत्ति पृथक होने की होती है. ऐसी अवस्था में समान गुण-धर्म वाले कणों की प्रवृत्ति मिश्रण के किसी एक भाग में एक साथ एकत्र होने की होती है और इस प्रकार के कणों का यादृच्छिक मिश्रण नैसर्गिक अवस्था वाला नहीं होता है. ऐसे कणों को अगर किसी प्रकार से मिला भी

चूर्ण के मिश्रण को निकाल कर पुनः भरना संभव नहीं हो पाता है. पृथक्करण के कारण मिश्रण की रासायनिक संरचना के बदलने से उत्पाद निर्धारित मानक को पूरा नहीं कर पाता है - उदाहरण स्वरूप डिटर्जेंट पाउडर अथवा दवा की टिकिया में कणिकाओं का इस प्रकार का वियोजन उनकी गुणवत्ता को प्रभावित करता है.

पृथक्करण की बुनियादी अवधारणा : कणकीय द्रव्य प्रकृति में सर्वव्यापी हैं. ये भी अक्सर गैस, द्रव और सामान्य ठोस द्रव्य के समान लक्षण दर्शाते हैं. जब किसी कणकीय मिश्रण के कणों की गति कम होती है तो कणों के मध्य की सापेक्ष गति के अत्यंत कम होने के कारण मिश्रण ठोस द्रव्य

जैसा व्यवहार प्रदर्शित करता है. औद्योगिक प्रक्रियाओं में उपयोग किये जाने वाले कणकीय मिश्रण सामान्यतया विजातीय घटकों से मिलकर बने होते हैं और उनके भौतिक गुण जैसे - आकार, घनत्व, आकृति तथा सतही खुरदुरापन (surface roughness) एक विस्तृत दायरे (range) में बदलते हैं. ऐसी अवस्था में जब मिश्रण के कणों की स्वयं की गति उनके आकार, आकृति तथा संघटन के अनुरूप नहीं होती है तो कणों का पृथक्करण आसानी से होता है. उदाहरण के लिए चावल और गेहूं, कोयला और बालू, चीनी और चावल आदि के मिश्रणों का वियोजन आसानी से किया जा सकता है.

भिन्न भिन्न आकार एवं घनत्व के कणिकाओं के उचित प्रकार से बने मिश्रण की आवश्यकता अनेक औद्योगिक प्रक्रियाओं में पड़ती है. ऐसे मिश्रण को प्राप्त करने के लिए समुचित सावधानी बरतने की आवश्यकता पड़ती है. निर्वाध विचरित करने वाले कणों की मूल प्रवृत्ति आकार एवं घनत्व के आधार पर पृथक होने की होती है. इस प्रवृत्ति के चलते ही छोटे और बड़े दानों के कणों के मिश्रण को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने पर बड़े दाने ऊपर की ओर आ जाते हैं. परिष्कार के दौरान भी ऐसे मिश्रण के कण आकार और घनत्व के आधार पर अलग अलग हो जाते हैं.

कणकीय द्रव्यों का प्रवाह उनके भौतिक गुणों जैसे- समूह-घनत्व तथा विश्रांति कोण (angle of repose) पर निर्भर करता है. जैसा कि ऊपर कहा गया है कणकीय द्रव्यों के मिश्रण की प्रवृत्ति अपने मूल घटकों में पृथक होने की होती है. इसके चलते कणिकाओं के मध्य होने वाली रासायनिक क्रियाओं की गति भी प्रभावित होती है.

कणकीय द्रव्यों के पृथक्करण की प्रक्रिया : कणों का पृथक्करण तीन प्रकार की प्रक्रियाओं द्वारा हो सकता है. पृथक-कारक प्रक्रिया के आधार पर इन्हें प्रक्षेप-पथ (trajectory), परिश्रवण (percolation) एवं इलुट्रीएशन (elutriation) पृथक्करण कहतें हैं. चित्र 2 में इन तीनों प्रकार के पृथक्करण की प्रक्रिया को रेखा-चित्र द्वारा दिखाया गया है.

प्रक्षेप-पथ पृथक्करण : अलग-अलग आकार वाली

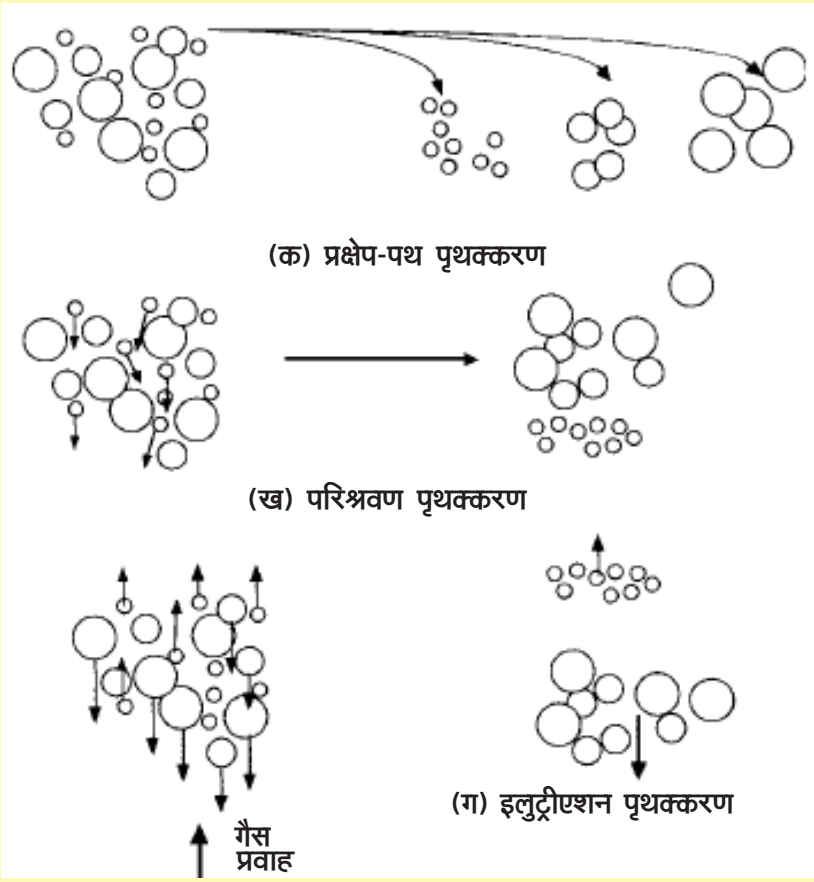

चित्र 2 : कणों के वियोजन की प्रक्रिया

कणिकाओं के मिश्रण को जब क्षैतिज-तल में प्रक्षेपित किया जाता है, तो उन पर ड्रैग-बल और उछाल-बल कार्य करते हैं. अगर कणिकाओं का आकार छोटा है तो ड्रैग-बल स्टोक्स के नियम द्वारा नियंत्रित होता है और कणिकाएं अपनी-अपनी सीमान्त-दूरी तक क्षैतिज-तल में गमन करती है. ऐसी अवस्था में जड़त्व के कारण कोई भी कणिका अपने आकार के लगभग चार गुना दूरी तय करने के उपरांत स्थिर गति की अवस्था में आ जाती है और नीचे की ओर गिराने लगती है. छोटे एवं हलके कण सर्वप्रथम अलग होकर नीचे गिरने लगते हैं और अत्यंत बड़े एवं भारी कण अधिक दूरी तक जाने के पश्चात सबसे बाद में नीचे गिरते हैं. हवा में फेंके गए कणों के मिश्रण का इसी प्रक्रिया के चलते वियोजन होता है. कन्वेयर पट्टी के सिरे से गिरने वाले कण भी इसी तरह का व्यवहार करते हैं. इस प्रकार के गमन के दौरान होने वाले पृथक्करण को चित्र 2 (क) में दिखाया गया है. इस प्रकार के पृथक्करण का प्रयोग भारतीय किसान खलिहान में और गृहणियां घर में अनाज के दानों के मिश्रण से छोटे और बड़े दानों को अलग करने में सदियों से करते आ रहे हैं.

परिश्रवण पृथक्करण : अगर छोटी कणिकाओं के मिश्रण में कणिकाओं में आकार और भार का आवंटन इस प्रकार का है कि कण अलग-अलग विचरण करने में सक्षम हैं, तो ऐसी कणिकाओं के समूह को छेड़ने के पश्चात कणिकाएं पुनः व्यवस्थित होने लगती हैं. इस प्रकार से निर्मित खाली स्थान को भरने के लिए कुछ कण ऊपर से नीचे की ओर गिर आते हैं और किसी अन्य स्थान के कण ऊपर की ओर प्रस्थान करते हैं. अगर कणों का समूह कई आकार के कणों से बना होता है तो छोटे आकार के कणों के लिये नीचे की ओर गिरना सहज होता है और उनकी प्रवृत्ति नीचे की ओर गिर कर पृथक होने की होती है. चित्र 2 (ख) में इस प्रकार का वियोजन दिखाया गया है. कणों के आकार के बीच का कम अंतर भी अधिक वियोजन के लिए प्रभावी होता है. जब भी कणों के समूह को छेड़ा जायेगा तो कणों का पुनः संगठन होगा और साथ ही उनका परिश्रवण वियोजन भी होगा. कणों के समूह को मथने, झझोड़ने, कम्पित करने अथवा उन्हें कणों के ढेर पर उड़ेलने के दौरान यह संभव है. इसके विपरीत इन प्रक्रियाओं के कारण द्रवों और गैसों में मिश्रण को प्रोत्साहन मिलता है. खनिज परिष्करण में अधात्री (gangue) को अलग अलग करने के लिए कम्पित जाली, यांत्रिक जाली, यांत्रिक बिलगावक आदि का प्रयोग किया जाता है जो इस प्रक्रिया पर आधारित होते हैं.

इस प्रकार का वियोजन अनाज के उन हापरों में भी दिखाई देता है जो लगातार भरे और खाली किये जाते हैं. हापर में उड़ेलने पर कण अक्सर शंकु के आकार का ढेर

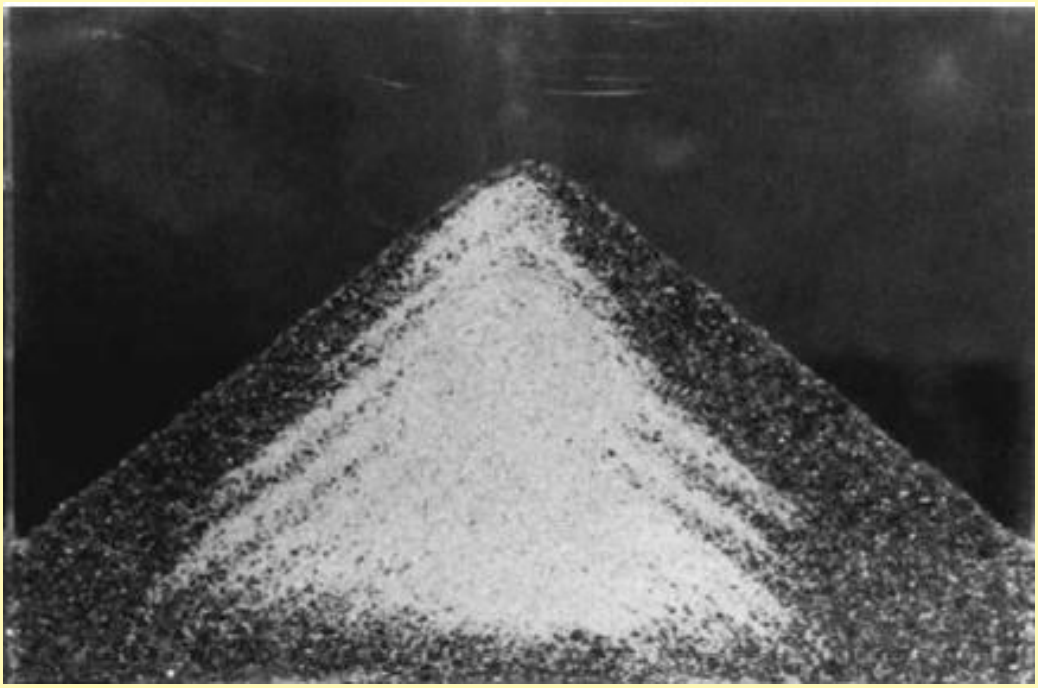

चित्र 3 : निर्बाध प्रवाहित होने वाले दो आकार के कणों के मिश्रण को उड़ेलने से पृथक्करण

बनाते हैं जिसमें बड़े कण ऊपर की ओर आ जाते हैं. अगर कण निर्वाध-विचरण करने वाली प्रवृत्ति के होते हैं तो बड़े आकार के कण ढेर के किनारे-किनारे लुढ़क कर नीचे की ओर आ जाते हैं और मिश्रण से अलग हो जाते है. चित्र 3 में कणों के ढेर पर कणिकाओं के मिश्रण को उड़ेलने से होने वाले पृथक्करण को देखा जा सकता है. भूसे युक्त गेहूं एवं चने के मिश्रित दानों की ओसाई करते समय भूसा हवा की दिशा में बह कर दूर चला जाता है और चने के बड़े दाने अनाज के ढेर में गेहूं के छोटे दानों से कुछ अलग होकर थोड़ी दूर तक फैल जाते हैं अथवा ढेर के ऊपर अलग सतह निर्मित करते हैं.

अगर किसी बेलनाकार पात्र (जैसे ड्रम) में रखे चूर्ण के मिश्रण को घूर्णित किया जाय तो कण अपने आकार के अनुसार पृथक होने लगते हैं. भौतिक विज्ञान एवं यांत्रिकी के सिद्धातों के आधार पर ऐसे उपकरण तथा उपाय विकसित किये गए हैं, जो इस प्रकार के वियोजन को रोकने में सक्षम पाए गए हैं.

कम्पित करने पर बड़े कणों का उर्ध्वगामी गमन : विभिन्न आकार के कणों के मिश्रण को जब कम्पित किया जाता है तब बड़े कण धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठने लगते हैं. ऐसे मिश्रण को कम्पित करने पर छोटे कणों के संस्तर में खाली स्थान बनते हैं, इस स्थान की जगह लेने के लिए बड़े कण (घुसपैठिए कण) ऊपर की ओर खिसकने लगते हैं. इस कार्य में इन घुसपैठियें कणों का जड़त्व उनकी सहायता करता है. इस व्यवहार को एक सरल प्रयोग द्वारा दिखाया जा सकता है. लोहे की एक बड़ी गोली को किसी पात्र (जैसे बीकर) में रखी रेत के ढेर की तली में रखकर अगर पात्र को ऊपर-नीचे धीमी गति से लगातार कम्पित किया जाय तो गोली बालू की सतह की ओर (ऊपर की ओर) उठती जाती है. अगर कम्पन की इस प्रक्रिया को जारी रखा जाय तो गोली फिर मिश्रण के नीचे आने लगती है. इस प्रभाव को 'ब्राजील नट प्रभाव' कहा जाता है. चित्र 4 में दो आयामी इकाई में कैरम के सफेद स्ट्राइकर के स्थान में विभिन्न समय में होने वाले परिवर्तन को दिखाया गया है. ऐसा ही व्यवहार बालू की ढेर की तली में रखे लूडो के पासे द्वारा भी प्रदर्शित किया जाता है (चित्र 5).

पृथक्करण की रोकथाम : कणों का वियोजन मुख्यतया उनके आकार के अंतर के कारण होता है. दो प्रकार के कणकीय द्रव्यों के उचित मिश्रण को बनाने में होने वाली कठिनाई को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि छोटे से छोटे कण भी अपने मूल आकार में हों और उनके आकार के बीच का अंतर कम से कम हो. अगर सभी कण 30μm से

चित्र 4 : द्विआयामी संस्तर को उर्ध्व-तल में कम्पित करने पर तली में रखी प्लास्टिक की डिस्क का ऊपर की ओर जाने की विभिन्न स्थितियां

(अ) पासा तली में (ब) पासा मध्य में (8 सेकेण्ड) (स) पासा शीर्ष पर (12 सेकेण्ड)

चित्र 5 : प्लास्टिक की गोलियों के ढेर की तली में रखें लूडो का पासा स्तम्भ को उर्ध्व-तल में हिलाने पर ऊपर की आरे जाने की विभिन्न अवस्थाएं

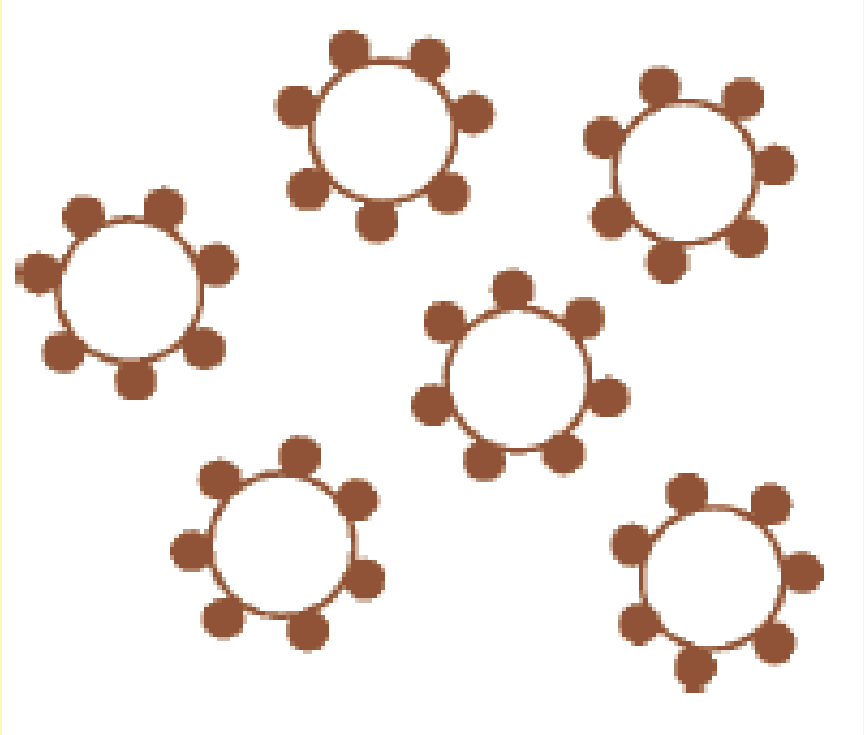

चित्र 6 : वाहक बड़े कणों एवं छोटे कणों का व्यवस्थित मिश्रण

कम आकार के हों और उनका घनत्व 2000-3000 kg/m^3 के दायरे में हो तो उनका पार्थक्य कोई गंभीर समस्या नहीं है. ऐसे छोटे कणों के बीच का परस्पर आकर्षण स्थिर-विद्युत बल, वैन-डर वाल बल और कणों में विद्यमान नमी के सम्मिलित प्रभाव के कारण होता है जो गुरूत्व एवं जड़त्व बल से अधिक होता है. इसके कारण कण आपस में चिपके रहते हैं और उनका पृथक्करण नहीं होता है. क्योंकि वे एक दूसरे के सापेक्ष गमन के लिए स्वतन्त्र नहीं होते हैं. ऐसे कणों को संसक्तिशील (cohesive) कण कहा जाता है. इस प्रकार के कणों का मिश्रण उत्तम कोटि का होता है. इनके यादृच्छ मिश्रण के नमूने में कणों की संरचना का आदर्श विसमान्यता (standard deviation) मिश्रण में कणों की संख्या का विलोमानुपाती होता है. अतएव एक निश्चित मात्रा के नमूने के लिए आदर्श विसमान्यता घटने पर मिश्रण की गुणवत्ता कणों के आकार के घटने के साथ बढ़ती है. निर्बाध रूप से विचरणशील कणों के मिश्रण में किसी द्रव की अल्प मात्रा मिला कर कणों की गतिशीलता (mobility) बदली जा सकती है. गतिशीलता में कमी पृथक्करण को रोकती है, जिससे अच्छी कोटि का मिश्रण प्राप्त किया जा सकता है. यादृच्छ मिश्रण से बेहतर मिश्रण प्राप्त करने के लिए कणिकाओं की आपस में चिपकने की प्रकृति का सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है. ऐसे मिश्रणों को व्यवस्थित अथवा अन्योन्यक्रियाशील (interactive) मिश्रण कहा जाता है. ये छोटे कणों (<5μm) के बने होते हैं,8 जो एक वाहक-कण पर विशेष व्यवस्थित रूप से चिपके होते हैं. कणों के आकार का सावधानी पूर्वक चुनाव कर तथा उनके आपसी आकर्षण के बलों को संपरिवर्तित कर कम विसंगति वाला अच्छी कोटि का मिश्रण (mixture with small variance) प्राप्त किया जा सकता है. चित्र 6 में इस प्रकार से बना मिश्रण दिखाया गया है. औषधि निर्माण उद्योग में इस तकनीक का सफलता पूर्वक प्रयोग किया जाता है ताकि दवा की गुणवत्ता के निर्धारित मानक पूरे किये जा सके. अगर कणों का आकार बदला नहीं जा सकता है अथवा किसी द्रव को भी नहीं मिलाया जा सकता है तो वियोजन की रोकथाम के लिए उन परिस्थितियों से बचना चाहिए जो पृथक्करण को प्रोत्साहित करती हैं. विशेषतया कणों के मिश्रण को उडेलने की प्रक्रिया के दौरान मिश्रण के ढेर की ढलान वाली सतह बनने से रोकने की व्यवस्था करनी चाहिए.

आभार : इस लेख में दिए गए चित्र 1, 2, 3 और 6 डॉ. मार्टिन रोड्स कि पुस्तक "Introduction to Particle Technology" द्वितीय संस्करण, जॉन विले एंड संस, (2008) से लेखक कि अनुमति से लिए गए हैं.

भविष्य की डिज़ाइनर फसलें और खाद्य सुरक्षा

प्रज्ञा गौतम
व्याख्याता, जीव विज्ञान
जी.एस.एस.एस., शाहबाद, राजस्थान-325217

आने वाले समय में कृषि वैज्ञानिकों की सबसे बड़ी चिन्ता, बढ़ती हुई आबादी के लिए खाद्यान्न आपूर्ति है. वर्ष 2050 तक विश्व की आबादी 9.7 अरब तक पहुँचने की संभावना है, जिसके लिए अभी से साठ प्रतिशत अधिक खाद्यान्न की आवश्यकता होगी. जनसंख्या वृद्धि और कृषि उत्पादकता के बीच संतुलन बनाये रखना बेहद आवश्यक है. अधिक उपज देनेवाली फसलें कई बार रोग प्रतिरोधक क्षमता से युक्त नहीं होती. पीड़कनाशियों के अत्यधिक उपयोग के बावजूद प्रतिवर्ष लगभग बीस प्रतिशत फसलें विभिन्न रोगों के कारण नष्ट हो जाती हैं. इन रासायनिक पीड़कनाशियों से जल और मृदा तो दूषित होती ही हैं, इसके साथ कुछ ही समय में रोगाणु इनके प्रति प्रतिरोधक क्षमता अर्जित कर लेते हैं. आधुनिक संश्लेषित रसायन यद्यपि प्रदूषणकारी नहीं हैं, किन्तु वे सामान्य किसान की क्रय क्षमता से बाहर है. अब समय है कि ऐसी फसलें विकसित की जाएँ जिनमें रोगाणुओं से लड़ने के लिए बेहतर रोग प्रतिरक्षा प्रणाली हो. ऐसी फसलें जिनके रोग प्रतिरक्षा तंत्र को पीड़क लम्बे समय तक भेद न सके. पादपों की रोग प्रतिरक्षा प्रणाली को समझकर वैज्ञानिक इस क्षेत्र में नई-पद्धतियों का अभिनव प्रयोग कर रहे हैं.

पादपों में रोग प्रतिरक्षा प्रणाली : पादपों में रोग प्रतिरक्षा तंत्र मनुष्य से भिन्न होता है. मनुष्य में सक्रिय प्रकार का प्रतिरक्षा तंत्र होता है जबकि पादपों में निष्क्रिय. मनुष्य के शरीर में जब रोगाणु प्रवेश करते हैं तो श्वेत रक्त कोशिकाएं उनके विरूद्ध प्रतिरक्षी उत्पन्न करती हैं. अनेक वर्ष बाद भी यदि वही संक्रमण दोबारा होता है, तो ये प्रतिरक्षी रोगाणुओं को पहचान कर नष्ट कर देते हैं. पादपों में इस प्रकार प्रतिरक्षी नहीं बनते. यदि कोई संक्रमण दोबारा होता है, तो पादप कोशिकाएं उन रोगाणुओं को याद नहीं रख पातीं. पौधों में रक्षा प्रक्रिया को दो भागों में बांटा जा सकता है– यांत्रिक और जैव रासायनिक प्रतिरोध. पादप शरीर रचना में कई बार ऐसी यांत्रिक रुकावटें होती हैं, जो रोगाणुओं के प्रवेश को बाधित करती है - जैसे अधिचर्म पर क्यूटिकल, मोम इत्यादि. कई बार रंध्रों की संख्या कम होती है या अन्य संरचनात्मक प्रतिरोध होते हैं. यदि पादपों के रंध्रों या कटे हिस्सों में से रोगाणुओं का प्रवेश हो जाता है तो कोशिका की सतह पर पहले से स्थित रसायन उनसे अनुक्रिया करते हैं. कुछ रसायन जैसे फीनोल्स और फाइटोअलेक्जिन आदि

पादप कोशिकाओं से स्रावित किये जाते हैं, जो रोगाणुओं की वृद्धि को रोक देते हैं. आधुनिक शोधों से ज्ञात हुआ है कि पादपों में प्रत्येक कोशिका की सतह पर कुछ एन्जाइम होते हैं जो रोगाणु से प्रतिक्रिया करते हैं. ये एन्जाइम काइनेज परिवार के होते हैं. इन्हें रिसेप्टर कहते हैं. ये रिसेप्टर रोगाणु द्वारा स्रावित प्रोटीन विशेष को ग्रहण करके ऐसे एन्जाइम को सक्रिय कर देते हैं जो कि सक्रिय ऑक्सीजन उत्पन्न करते हैं. यह ऑक्सीजन रोग ग्रस्त स्थान की कोशिकाओं को नष्ट कर देती है. वैज्ञानिकों ने पादप कोशिकाओं की सतह पर ऐसे लगभग 600 रिसेप्टरों की पहचान की हैं. इस प्रकार पादप शरीर की प्रत्येक कोशिका रोगाणुओं के विरूद्ध प्रतिक्रिया करती है.

फसली पादपों में रोग सुग्राहिता : आपने ध्यान दिया होगा कि अधिकतर जंगली पौधों पर रोगों का प्रकोप नहीं होता है. घर के छोटे से बगीचे के पौधे भी रोगों से सुरक्षित रहते है किन्तु फसलें अनेक रोगों की चपेट में आ जाती हैं. अनेक प्रकार के फंगस, वायरस, जीवाणु, कीट और कृमि फसली पौधों पर आक्रमण करके उन्हें नष्ट कर देते हैं. प्रतिवर्ष किट्ट रोग से जो कि पक्सीनियाग्रेमिनिस नामक फंगस से होता है, गेहूं की फसल को भारी नुकसान होता है. फाइटोप्थोराइनफेसटेंस नामक फंगस आलू और टमाटर की पत्ती में झुलसा रोग (लीफब्लाइट ऑफ़ पोटेटो) उत्पन्न कर फसल उत्पादन को बुरी तरह प्रभावित करते हैं. इसी प्रकार सोयाबीन क़े फसलों की भी फंगस और कृमि से प्रभावित होकर नष्ट होने की संभावना बनी रहती है. केले, अमरुद, सेब जैसे फल और भिंडी, पालक, बैंगन, गोभी आदि सब्जियों का बिना कीटनाशकों के अच्छा उत्पादन नहीं होता. फसली पौधे रोगों से शीघ्र प्रभावित होते हैं, इसके कई कारण है. वातावरणीय कारक जैसे नमी, नत्रजन उर्वरकों की उपस्थिति रोगाणुओं की वृद्धि को प्रोत्साहित करती हैं. फसल में पौधे सघन रूप से व्यवस्थित रहते हैं और एक समान जीनी संरचना के होते हैं, इसलिए शीघ्र ही बीमारियों की चपेट में आ जाते हैं. यदि कोई किस्म किसी एक रोग के प्रति प्रतिरोधक भी होती है तो अन्य रोगों की चपेट में आ जाती है. अतः अब यह बहुत ही आवश्यक हो गया कि ऐसी किस्में विकसित की जाएँ, जिनमें अनेक रोगों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता हो और दीर्घकाल तक रोग प्रतिरोधकता बनी रहे. पूर्व में चयन, संकरण और उत्परिवर्तन जैसे तरीकों से रोग प्रतिरोधक किस्मों का विकास किया जाता था. ये तरीके अधिक समय लेते थे और किसी रोग के प्रति प्रतिरोध अल्पकालीन होता था. इसके बाद आनुवांशिक रूप से संशोधित फसलें बाजार में आयीं. इनमें बाह्य जींस के समावेश होने के कारण इनके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को लेकर ये हमेशा विवादों में रही. फसली पौधों पर नवीनतम शोध कार्य इसी दिशा में हो रहे हैं कि पौधे की प्राकृतिक जीनी संरचना में बिना किसी जीवाणु जीन का समावेश किये प्रतिरोधक क्षमता विकसित की जाये और वह भी अल्प व्यय में. ऐसी किस्में स्वास्थ्य के लिए भी सुरक्षित रहेंगी और पीड़कनाशियों के अल्प प्रयोग से पर्यावरण भी सुरक्षित रहेगा.

फसल रोग प्रतिरोधकता के क्षेत्र में नवीनतम कार्य–

sik 1 - एन्जाइम - अरेबिडोप्सिस नामक पौधे पर ज्यादातर शोधकार्य हुए हैं. यह सरसों कुल का जंगली पौधा है जो खरपतवार के रूप में उगता है. इसमें मात्र पाँच गुणसूत्र होते है. छोटे जीनोम और सम्पूर्ण रूप से ज्ञात जीनी संरचना के कारण इसका शोध में मॉडल पौधे के रूप में उपयोग किया जाता है. इस पौधे से एक एन्जाइम sik 1 अलग किया गया है. इस एन्जाइम को रोग प्रतिरक्षा में फ़ायरिंग पिन की संज्ञा दी गयी है. यह रिसेप्टर से जुड़ कर सक्रिय ऑक्सीजन उत्पन्न करता है. फसली पौधों में भी ऐसा जीन तलाशा जा रहा है, जो sik 1 के समान एन्जाइम बना सके.

R-जीन (रोग प्रतिरोधक जीन) – फसली पौधों के जंगली सम्बन्धियों में R-जीन पाए जाते हैं जो रिसेप्टर प्रोटीन बनाते हैं. ये जीन फसलों में अनुपस्थित होते हैं. रोगाणु के Avr जीन द्वारा जो इफ़ेक्टर प्रोटीन बनाये जाते हैं उनको ये रिसेप्टर प्रोटीन पहचान लेते हैं. इस तरह के बहुत सारे रिसेप्टर प्रोटीन होते हैं, जो इफ़ेक्टर की उपस्थिति में सक्रिय हो जाते हैं. सर्वप्रथम पौधे में कोशिका झिल्ली पर स्थित PRR (पैटर्न रिकग्निशन रिसेप्टर) प्रोटीन रोगाणु कोशिका के प्रोटीन को पहचानते हैं, जिन्हें PAMPs (पेथोजन एसोसिएटेड मॉलिक्यूलर पैटर्न) कहते हैं. रोग प्रतिरक्षक क्षमता जो PRR द्वारा सक्रियित होती है, PTI (PRR ट्रिगर्ड इम्युनिटी) कहलाती है. PTI को रोग प्रतिरोधकता का स्रोत माना जाता है. यह प्राथमिक रोग प्रतिरक्षक क्षमता है. इसके उपरांत रोगाणु के इफ़ेक्टर प्रोटीन को रिसेप्टर प्रोटीन द्वारा पहचान लिया जाता है. इसे ETI (इफ़ेक्टर ट्रिगर्ड इम्युनिटी) कहा जाता है. यह द्वितीयक रोग प्रतिरक्षा है. R- Avr अनुक्रिया, रोगकारक जीन - रोग प्रतिरोधक जीन अनुक्रिया कहलाती है. अर्थात एक रोग कारक जीन के लिए एक रोग प्रतिरोधक जीन. इस तरह के कुछ R जीन जंगली पौधों में पहचाने जा चुके हैं और फसलों में इनका स्थानांतरण और परीक्षण किया जा चुका है.

TAL इफ़ेक्टर और CRISPR तकनीक : TAL इफ़ेक्टर जीवाणु द्वारा स्रावित प्रोटीन हैं जो पौधे में ऐसे जीन की अभिव्यक्ति के लिए उत्तरदायी होते हैं, जो रोग के लक्षणों

को प्रकट करते हैं. TAL इफ़ेक्टर द्वारा रोग सुग्राही जीन पहचान कर इन्हें जीन एडिटिंग के लिए प्रयोग में लिया जाता है. इसी प्रकार CRISPR (रेगुलेटरी इंटर स्पेस्डशोर्ट पेलिंड्रोमिक रिपीट) DNA के छोटे खंड हैं जो जीवाणु में पाए जाते हैं. ये खंड उन विषाणुओं के रहते हैं जो जीवाणुओं पर आक्रमण करते हैं और इनमें विषाणुओं से संबंधित सूचना रहती है. CRISPR को गाइड RNA से संयोजित कर के काम में लिया जाता है. इस तकनीक को CRISPR/Cas9 तकनीक कहते हैं. इसे फसली पौधों में जीन संशोधन, किसी जीन को हटाने या नवीन जीन प्रविष्ट कराने के लिए प्रयोग किया जाता है. नवीन जीन उसी जाति के जंगली पौधों से या अन्य पादप जाति से लिये जा सकते हैं. इस तकनीक से किसी अन्य जाति का जीन प्रविष्ट कराये बिना भी वांछित जेनेटिक उत्परिवर्तन कराये जा सकते है. इस प्रकार TAL इफ़ेक्टर और CRISPR तकनीक के प्रयोग से डिज़ाइनर R-जीन बनाये जा सकते हैं, जो कि फसल में अनेक रोगाणु इफेक्टर्स के प्रति रोग प्रतिरोधकता उत्पन्न कर सकते हैं. इस तकनीक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह अपेक्षाकृत सरल और अल्प व्यय तकनीक है. इसमें समय भी कम लगता है. फसलों ही नहीं बल्कि फलदार वृक्षों, सजावटी पौधों में भी इच्छित गुण प्राप्त करने के लिए यह तकनीक काम में ली जा रही है. बाजार में इस तकनीक से डिज़ाइन की हुई मक्का की किस्म आ चुकी है.

फसलों में बेहतर रोग प्रबंधन के लिए निम्न व्यूह रचनाएँ अपनाई जा सकती हैं -

1. एक साथ एक ही फसल की अनेक किस्मों के प्रयोग से रोगाणु द्वारा फसल की रोग प्रतिरोधकता को भेद पाना मुश्किल होगा.
2. एक ही किस्म में अनेक R-जीनों और NLRs की उपस्थिति फसल को दीर्घकालीन प्रतिरोधकता प्रदान करती है.
3. जंगली किस्मों में नवीन R-जीनों की तलाश और उनका फसलों में प्रयोग.
4. पोटेशियम युक्त पोषकों का उपयोग फसलों की रोग प्रतिरोधकता में वृद्धि कर सकता है.

इस प्रकार हम आशा कर सकते हैं कि भविष्य की डिज़ाइनर फसलें मानव शरीर पर बिना हानिकारक प्रभाव डाले खाद्यान्न उत्पादन में क्रांति ला सकेंगी.

कविता

बल हैं सर्वस्त्र

जैसे ही न्यूटन ने देखा पेड़ से
गिरा सेब का एक फल।
बहुत सोचने पर पाया गुरूत्वाकर्षण
बल के कारण हुआ सफल।।
तब से बल का मात्रक होता है
'न्यूटन' और राशि होती 'सदिश'।
जो हम सभी को चलाता, कभी गिराता
कभी उठाता है यह है सर्वस्त्र।
पृथ्वी पर लगता है यह बल जिससे सभी
प्राणियों कहीं भी चलते अनयंत्र ।।
बल एक ऐसी इकाई है
जो भौतिकी का है आधार।
बल के विभिन्न प्रकार होते हैं,
जो द्रव्यमान और त्वरण के बढ़ने से बढ़ते।
गुरूत्वीय बल, चुबकीय बल, नाभिकीय बल और
विद्युत स्थैतिकी बल सभी एक दूसरे से आकर्षित होते।।
बिना बल के त्वरण नहीं,
बिना त्वरण के विस्थापन नहीं होता।
और बिना विस्थापन के
गुरूत्वाकर्षण बल नहीं लगता ।।
गुरूत्वीय बल में दो बड़े द्रव्यमान के पिंडों में
एक निश्चित दूरी पर सिर्फ आकर्षित होते हैं।
जबकि चुंबकीय एवं विद्युत स्थैतिकी बलों में आकर्षण के
साथ-साथ विपरीत आवेशों में प्रतिकर्षित भी होते हैं।।
नाभिक के अंदर नाभिकीय बल होता है
जो फर्मी दूरी पर लगता है अति बलशाली।
तभी तो रिएक्टर में प्रदूषण मुक्त बिजली पैदा हुई
अपार और पोखरण परीक्षण हुआ शक्तिशाली।।
एक दूसरे में इंसानियत का बल लगाएं
हरेक के प्रति दोस्ती का हाथ बढ़ायें।
मैत्री व सद्भावना से देश को शक्तिशाली बनाएं।।

- संजय गोस्वामी
एनआरबी, अणुशक्तिनगर मुंबई -94

सौर पी.वी.आधारित पावर संयंत्र

टीएसडी, बीएआरसी की पहल और कल्पना

आर. के. वर्मा, बी.आर.पटनायक, पी.के.पांडा, एस.के.कौल, एच. मिश्रा
तकनीकी सेवा प्रभाग, इंजीनियरिंग सेवा समूह
Email-rkvarma@barc.gov.in

सौर ऊर्जा, विद्युत ऊर्जा की कमी को पूर्ण करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है, क्योंकि विद्युत ऊर्जा के मांग में वृद्धि के कारण परंपरागत स्रोत (कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस) की खपत बढ़ी है जिसके परिणामस्वरुप इन स्रोतों से ऊर्जा के उत्पादन में गिरावट आई है. इलेक्ट्रिक सिस्टम में पीवी स्थापना विभिन्न फोटोवोल्टिक इकाइयों की श्रृंखला से बनाई गई है, जो कि सस्ती दर पर बिजली का उत्पादन करने के लिए सौर ऊर्जा का उपयोग करती है.

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र (बीएआरसी) में बिजली की आपूर्ति टाटा पावर से होती है, और वर्तमान में 110 केवी और 22 केवी का औसत एचटी टैरिफ 8.49 रुपये प्रति यूनिट है. तकनीकी सेवा प्रभाग (टीएसडी) ने बीएआरसी में ऊर्जा खपत को कम करने के लिए कई ऊर्जा संरक्षण उपायों को लागू किया है और ऊर्जा खपत की लागत को कम करने के लिए सौर पीवी आधारित छत बिजली संयंत्रों को स्थापित करने की पहल की है.

भारत में सौर शक्ति और बीएआरसी की प्रतिबद्धता : 30 अप्रैल 2017 तक देश की सौर ग्रिड में 12.50 गीगावाट की संचयी क्षमता थी. वर्तमान में सौर ऊर्जा की औसत कीमत में कोयले से प्राप्त ऊर्जा की औसत कीमत से 18 प्रतिशत की कमी आई है. जनवरी 2015 में भारत सरकार ने अपनी सौर योजनाओं का विस्तार किया है तथा साथ ही

साथ 2022 तक 100 डॉलर निवेश और 100 गीगावाट सौर क्षमता का लक्ष्य भी निश्चित किया है.

परमाणु ऊर्जा विभाग (डी ए ई) की भारत सरकार के प्रति 500 मेगावाट की प्रतिबद्धता के हिस्से के रूप में बीएआरसी, 1.5 मेगावाट क्षमता वाले पीवी पैनल आधारित बिजली संयंत्रों को स्थापित करने के लिए प्रतिबद्ध है. सौर पीवी मॉड्यूल के छत प्रतिष्ठानों के लिए बीएआरसी की इमारतों में सामान्य सुविधा भवन (सीएफबी), मॉड्यूलर लेबोरेटरीज यूएमआरटी बिल्डिंग, आरएमपीपी, टीएसडी बिल्डिंग, न्यू इंजिनियरिंग हॉल, नए पशु घर आदि को चुना गया है.

टीएसडी ने सीएफबी पर 400 किलोवाट स्थापना के लिए खुली बोली प्रक्रिया के जरिए रू.75 प्रति डब्ल्यूपी की दर प्राप्त की, जिसमें 5 (पांच) वर्ष संचालन और अनुरक्षण लागत और पांच साल की व्यापक गारंटी शामिल है. बीएआरसी द्वारा वर्तमान टैरिफ भुगतान के हिसाब से निवेश की पूरी लागत पांच और आधे साल की अवधि के भीतर वसूल हो जाएगी.

सीएफबी और मॉड लैब पर स्थापित पीवी पैनल क्रमशः पॉलीक्रिस्टलीय और मोनो-क्रिस्टलीय आधारित है, जो 15.5 प्रतिशत से अधिक की दक्षता रखते हैं. इन पीवी पैनलों में 72 सेल मॉड्यूल होते हैं जिसमें बेहतर दक्षता के लिए चार बस-विन्यास होते हैं. इन पैनलों की आयु 20 साल से अधिक है. बीएआरसी, ट्रॉम्बे में यूएमआरटी पर 40 केडब्ल्यूपी रूफटॉप स्थापना सौर पीवी आधारित संयंत्र की पहली स्थापना है, जिसे 05 अक्टूबर 2016 को ग्रिड के साथ सिंक्रनाइज किया गया है.

पानी पम्पिंग प्रणाली के लिए सौर पीवी पैनल : टीएसडी ने बीएआरसी के नर्सरी इलाके के निकट स्थापित कृषि कार्य के लिए 5 एचपी बीएलडीसी मोटर चालित पम्पिंग सिस्टम के पहले प्रोटोटाइप के लिए 5 केडब्ल्यूपी पॉली-क्रिस्टलीय आधारित सौर पीवी पैनल को सफलतापूर्वक स्थापित किया है. विभिन्न डीएई यूनिट टाउनशिप में 10 ऐसे ही सौर पीवी संचालित बीएलडीसी मोटर चालित पंप सेट स्थापित करने के प्रयास किए जा रहे हैं.

सौर पीवी आधारित अन्य पहल, कल्पना और डिजाइनः निम्नलिखित सौर पीवी पैनलों के अनुभव अनुप्रयोगों के दो उदाहरण हैं, जिन्हें डिजाइन किया गया है और टीएसडी द्वारा निष्पादन की प्रक्रिया में हैं.

(अ) बीएआरसी (बार्क) समुद्र तट पर फ्लोटिंग बार्ज (एमवी-सुजल) के लिए लचीला सौर पीवी पैनल :- बीएआरसी का लगभग नौ किलोमीटर का बड़ा समुद्री किनारा है और समुद्री किनारा खतरे की धारणा का मुकाबला करने के लिए सीआईएसएफ समुद्री विंग सशस्त्र कर्मियों के साथ एक फ्लोटिंग बार्ज रात-दिन तैनात किया गया है. बार्ज को विद्यमान करने के लिए, टीएसडी ने दो पोर्टेबल पेट्रोल चालित डीजी सेट की व्यवस्था की है. हालांकि ये डीजी सेट यादृच्छिक लोड परिस्थितियों के कारण सदैव समस्याग्रस्त रहते हैं और ईंधन के रुप में पेट्रोल के उपयोग से सदैव आग लगने की संभावना रहती है. अब, टीएसडी ने पेट्रोल चालित डीजी सेटों पर निर्भरता को कम करने के लिए बार्ज के छत पर एक लचीला सौर पी.वी. आधारित सौर पैनल बिजली आपूर्ति प्रणाली तैयार की है.

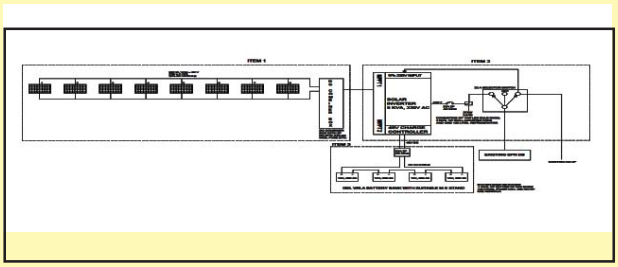

लचीला सौर पीवी आधारित विद्युत आपूर्ति का आरेख

लचीला मोनो-क्रिस्टलीय आधारित सौर पैनल 16.38 प्रतिशत की उच्च दक्षता के साथ वितरित विक्षनरी बस वाले हैं. इन लचीले सोलर पीवी पैनलों को वैसे छतों के शीर्ष पर लगाया जा सकता है जो पारंपारिक सौर पीवी स्थापना के लिए उपयुक्त नहीं हैं, जैसे कि झुकी छतों, कम भार वाली छतों आदि. लचीला सोलर पीवी पैनल के साथ कार्यान्वयन की लागत अधिक है, लेकिन बीएआरसी जैसे मौजूदा एचटी टैरिफ उपभोक्ता के लिए निवेश की वसूली अवधि लगभग आठ साल है.

(ब) बीएआरसी की नर्सरी बिल्डिंग में डीसी वितरण आधारित सौर पीवी पैनल : वर्तमान उपयोगिता परिदृश्य में, इमारतों में निरंतर वृद्धि हो रही है, जिसमें एकदिश धारा (डीसी) इनपुट की आवश्यकता होती है जैसे एलईडी लैंप, ब्रशलेस डीसी (बीएलडीसी) मोटर चालित पंखा, पीसी, लैपटॉप, और मोबाइल चार्जर्स आदि की एसएमपीएस बिजली आपूर्ति. बिजली लोड इन विद्युत भारों को एसी से डीसी पावर के रूपांतरण की आवश्यकता होती है. दूसरी तरफ सौर पीवी डीसी शक्ति का उत्पादन करती है, जिसे इलेक्ट्रिक पॉवर सिस्टम में मिलान करने के लिए एसी में परिवर्तित किया जाता है और फिर डीसी संगत लोड के लिए डीसी में परिवर्तित किया जाता है. ये एसी-डीसी और डीसी-एसी-डीसी रूपांतरण चरण 30 प्रतिशत या इससे अधिक की हानि करते हैं. यह डीसी वितरण योजना, रूपांतरण चरणों

को समाप्त कर उनके कार्यान्वयन की लागत और बिजली के नुकसान को कम करने में मदद करती है. इसके अलावा, कम वोल्टेज डीसी वितरण बिजली के कारण लगने वाले आग की संभावना काफी कम कर देता है. साथ ही कम डीसी वोल्टेज वितरण मानव विद्युत सुरक्षा की दृष्टि से भी काफी सुरक्षित है.

क्रमशः दो कारणों से 48 वोल्ट में डीसी वितरण की पसंद सबसे उपयुक्त है - पहले यह 36 वोल्ट या 24 वोल्ट सिस्टम की तुलना में अधिक कुशल है, दूसरी बात यह है कि दूरसंचार उद्योग में 48 वोल्ट सिस्टम बहुत परिपक्व होते हैं और बिजली की आपूर्ति उद्योग से आसानी से उपलब्ध होती है.

केस स्टडी के रूप में नर्सरी बिल्डिंग : लैंडस्केप और कॉस्मेटिक रख-रखाव अनुभाग (ए और एसईडी) अब हरे भरे नर्सरी क्षेत्र में नवनिर्मित भवन से चल रही है. इस इमारत में केवल 4 किलोवाट की रोशनी भार और एक पीसी है. उच्च दक्षता एलईडी लैंप आधारित फिक्स्चर, बीएलडीसी मोटर चालित पंखे में बदलकर लोड को 1.5 किलोवाट तक घटा दिया जाएगा. इसके अलावा, 230 वोल्ट एसी सिस्टम की बजाय, सौर पीवी पैनल से पूरी तरह से संचालित 48 वोल्ट डीसी आधारित वितरण प्रणाली प्रस्तावित है. क्रियान्वयन के बाद, यह इमारत पूरी तरह से सौर शक्ति से संचालित होगी. नर्सरी भवन में सौर पी.वी. आधारित डीसी वितरण की प्रस्तावित योजना ऊपर दी गई है.

सौर पीवी पावर प्लांट की सुरक्षा पहलू : सौर पी.वी. संयंत्र में स्थिर उपकरण होते हैं. पर्याप्त विद्युत सुरक्षा के साथ पीवी मॉड्यूल और परिवर्तक (डीसी से एसी) जैसे इलेक्ट्रॉनिक उपकरण संयंत्र के मुख्य घटक हैं. स्ट्रिंग के डीसी आउटपुट वोल्टेज को अधिकतम 800 वोल्ट से 1000 वोल्ट तक बनाने के लिए पीवी मॉड्यूल श्रृंखला में जोड़े गये हैं. यह उच्च डीसी वोल्टेज रख-रखाव कर्मियों के लिए चिंता का विषय हो सकता है. 1000 वोल्ट डीसी और आईपी 67 के लिए योग्य विशेष एमसी 4 कनेक्टर इंटरकनेक्शन के लिए उपयोग किया जाता है.

सुरक्षा समीक्षा : यूएमआरटी और मॉड लैब के लिए सौर पीवी प्रस्ताव की समीक्षा क्रमशः यूईडी और टीएसडी की स्थानीय सुरक्षा समितियों में की गई. तत्पश्चात मॉड लैब मामले को यूएलएससी मॉड लैब ने पुनः समीक्षा के पश्चात आवश्यक अनुमोदन प्रदान किया. सीएफबी की सौर पीवी स्थापना की भी डीएसआरसी-सीएफबी द्वारा समीक्षा की गई है और वर्तमान में बीएआरसी सेफ्टी काउंसिल की स्वीकृति प्रक्रिया में है.

समापन टिप्पणी : सौर पी.वी. आधारित छत बिजली संयंत्रों की लागत दिन प्रतिदिन कम हो रही है और ऊर्जा के एक स्थायी और स्वच्छ स्रोत के लिए दोनों ग्रिड और ऑफ ग्रिड उपभोक्ताओं को आशा प्रदान करती है. 48 वोल्ट डीसी पर बिजली उत्पन्न करने के लिए छतों पर विकेंन्द्रीकृत सौर संयंत्र, घरों और कार्यालयों में उपयोग के लिए सबसे प्रभावी विकल्प हो सकता है.

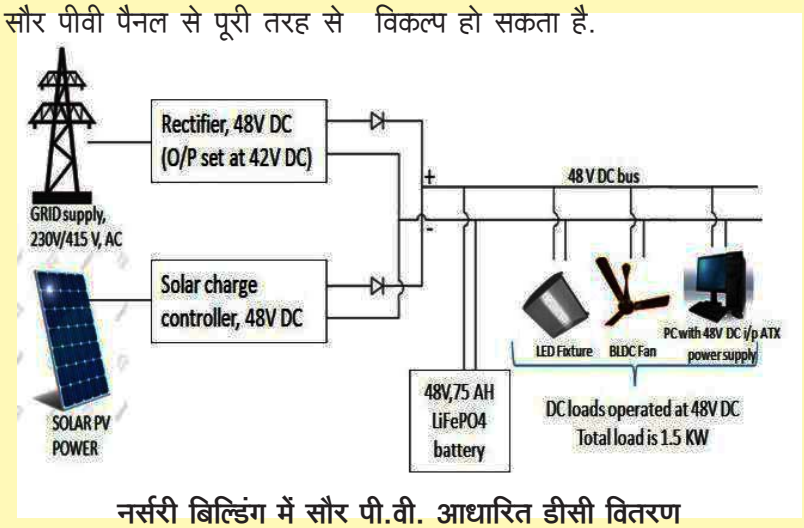

नर्सरी बिल्डिंग में सौर पी.वी. आधारित डीसी वितरण

आभार

1. बीएआरसी सुरक्षा परिषद
2. इंजीनियरिंग सेवा समूह
3. डिजाइन सुरक्षा की समीक्षा समिति-सीएफबी
4. मॉड लैब स्थानीय सुरक्षा समिति
5. वास्तुकला और संरचनात्मक इंजीनियरिंग प्रभाग
6. तकनीकी सेवा प्रभाग
7. एमएनआरई वेबसाइट
8. प्रभाग के वरिष्ठ और सहकर्मी

कैसे देखते हैं, हम

दृष्टि पथ की संरचना

डॉ.प्रेमचंद्र स्वर्णकार
एम.बी.बी.एस., एम.डी.
गायत्री नगर, पो.दमोह, पिन-470661 (उ.प्र.)

देखने की प्रक्रिया समझने के लिए दृष्टि-पथ की संरचना को समझना आवश्यक है.

दृष्टिपथ : प्रकाश की किरणें रेटिना पर पड़ने के बाद नेत्र गोलक से जुड़ी दृष्टिनाडी (Optic Nerve) के द्वारा ऑप्टिक किएज्मा एवं ऑप्टिक ट्रेक्ट (Optic Tracts) से होती हुई मस्तिष्क में प्रवेश करती है. इस पूरे मार्ग को दृष्टि-पथ कहते हैं. इसमें निम्न लिखित संरचनाएं भाग लेती हैं :-

1. दो ऑप्टिक नर्व (Two Optic Nerves)
2. एक ऑप्टिक किएज्मा (One Optic Chaisma)
3. दो ऑप्टिक ट्रेक्ट (Two Optic Tracts)
4. दो लेटरल जेनीकुलेट बॉडीज (Two Leteral Geniculate Bodies)
5. दो ऑप्टिक रेडियेशन्स (Two Optic Radiations)
6. प्रत्येक तरफ का विज्युल कॉर्टेक्स (Each side visual cortex)

1. ऑप्टिक नर्व (Optic Nerve) : यह नेत्र गोलक के पीछे से निकलकर ऑप्टिक किएज्मा नामक संरचना तक जाती है और पूरी ऑप्टिक नर्व तक एक झिल्ली (Meningeal Sheath) से ढकी रहती है. इस नर्व को चार भागों में बांटा जा सकता है.

i. **नेत्र के अंदर का भाग** (Intra occular) यह 1 मि.मी.का होता है.
ii. **नेत्र गुहा के अंदर का भाग** (Intra orbital) यह 25 मि.मी. का होता है.
iii. **नेत्र ध्रुव का भाग** (Intra occia) यह 4-10 मि.मी.का होता है.
iv. **खोपडी के अंदर का भाग** (Intra cranial) यह 10 मि.मी.होता है.

2. **ऑप्टिक किएज्मा** (Optic Chiasma) : यह चपटे बैंड के रूप में होता है जिसका आकार 8x12 मि.मी. होता है. और यह पिट्यूटरी फोसा (Pituitary Fossa) में स्थित होता है. ऑप्टिक नर्व इसके अगले भाग में दोनों कोणों पर जुडी रहती है. ऑप्टिक नर्व के तंतु ऑप्टिक किएज्मा से होकर जाते है. दोनों आंखों के नाक के पास वाले दृष्टिपटल या रेटीना के आधे हिस्से से निकले तंतु एक दूसरे को क्रॉस करके विपरीत तरफ के ट्रेक्ट (Tracts) में जाते है जबकि प्रत्येक आंख के बाहर वाले रेटीना से निकले तंतु बगैर क्रॉस बनाये अपने तरफ के ही ट्रेक्ट (Tract) में जाते हैं.

3. **ऑप्टिक ट्रेक्टस** (Optic Tracts) - ये बेलनाकार संरचनाएं है जो ऑप्टिक किएज्मा के पिछले हिस्से से निकलती है और मस्तिष्क के जेनिकुलेट बॉडी (Geniculate Body) में समाप्त होती है. प्रत्येक ट्रेक्ट (Tract), बगैर क्रॉस वाले तंतु, जो रेटीना के आधे भाग से निकलते हैं, से मिलकर बनते हैं. साथ ही इसमें विपरीत तरफ की मेक्यूला (Macula) भी होती है.

4. **लेटरल जेनीकुलेट बॉडीज** (Lateral Geniculate Bodies) - ये अंडाकार रचनाएं है जो दृष्टिनाडी (ऑप्टिक नर्व) के पिछले अंतिम सिरे पर स्थित होती है और ये दोनो तरफ होती है. दोनो ऑप्टिक ट्रेक्ट (Optic tract) के फाईबर्स (Fibers) या तंतु, जेनिकुलेट बॉडी (Geniculate Bodies) में समाप्त होते है, और यहां से ऑप्टिक रेडियेशन (Optic Radiations) के नये तंतु निकलते है.

5. **ऑप्टिक रेडियेशन्स** (Optic Radiations) - लेटरल जिनिकुलेट बॉडी से निकले हुये तंतु (Fiber) ऑप्टिक रेडियेशन का निर्माण करते है. इस रेडियेशन में तंत्रिका तंतु क्रम से व्यवस्थित होते हैं. जिसका ऊपरी एक चौथाई

हिस्सा दृष्टिपटल के आधे नासिका भाग (Nasal half) के एक चौथाई हिस्से का प्रतिनिधित्व करता है. इसी प्रकार के रेडियेशन का निचला आधा भाग दृष्टिपटल के नीचे वाले भाग का प्रतिनिधित्व करता है.

6. **विज्युल कॉर्टेक्स** (visual cortex) - यह मस्तिष्क के पिछले भाग ऑक्सीपिटल लोब (Occipital lobe) में केल केरिन फिशर के नीचे एवं ऊपर फैला होता है जो ऑक्सीपिटल पोल (Occipital pole) तक जाता है.

आंख का दृष्टि तंत्र (Mechanism of eye or sight) - जब प्रकाश की किरणें पारदर्शी कार्निया या स्वच्छ पटल से होते हुए एक्यूअस ह्यूमर एवं लेंस से गुजरती हैं, तो वे कुछ मात्रा में झुक जाती हैं. इसको अपवर्तन (Refraction) कहते हैं. इसके द्वारा रोशनी के बड़े क्षेत्र से आने वाली किरणें दृष्टिपटल के छोटे छिद्र पर केंद्रित होती है. प्रकाश की समांतर किरणें जब आंख के उत्तल लेंस से टकराती हैं तो दृष्टि पटल के केंद्र बिंदु की तरफ झुकती हैं. यदि वस्तु 7 मीटर से कम दूरी पर स्थित है, तो लेंस की गोलाई बढाना आवश्यक होता है, ताकि रेटीना पर उसकी प्रतिछाया केंद्रित हो सके इसे समायोजन कहते हैं

नेत्र गुहा में आंख छः पेशियों द्वारा घूमती हैं. ये पेशियां छोटे फीते जैसी होती है और नेत्रों की बाह्य दीवारों से जुड़ी रहती हैं. ये पेशियां आंखों पर खिंचाव डालती है

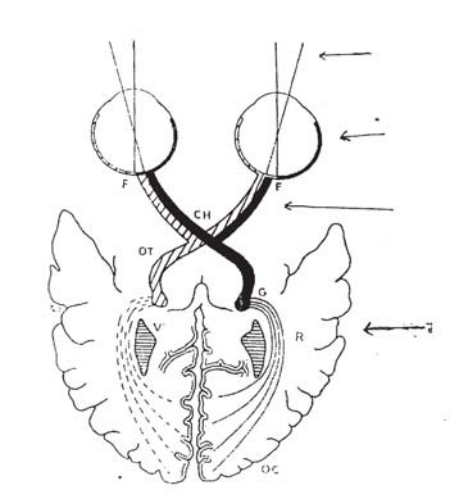

देखने की प्रक्रिया में प्रकाश किरणों का रास्ता

दृष्टि पथ (Visual pathway)
एफ-फोविआ, सी.एच.-किएज्मा, ओ.टी.-ऑप्टिक ट्रेक्ट जी-लेटरल जेनीकुलेट बाडी, आर-ऑप्टिक रेडिएशन्स ओ.सी.-ऑक्सीपिटल कार्टेक्स, वी-लेटरल वेंट्रीकिल (साभार-पार्सन्स, डिसीजेज आफ द आई)

और उनकी हलचल को समन्वित करती है. इस प्रकार दोनों आंखें एक वस्तु पर केंद्रित होती है. एक या एक से अधिक पेशियों के कमजोर होने पर आंख घूम जायेगी. ऐसी स्थिति को सामान्यतः भेगापन (Squint) कहते हैं.

स्पष्ट है कि दृष्टि की क्रिया-विधि काफी जटिल प्रक्रिया है. अतः इसे आसानी से समझने के लिए हम इस प्रक्रिया को निम्न भागों में बांट देते हैं, जिससे इसे समझना काफी आसान हो जायेगा -

(1) कैमरे तथा आंख की कार्य विधि में समानता
- आंखों के अंगों तथा कैमरा के भागों में समानता
- रेटीना और प्रकाश सुग्राही प्लेट में समानता

(2) केंद्रीकरण या फोकसिंग (Focusing)
(3) दृष्टि - मुद्राओं का बनना
(4) प्रकाश किरणों का परावर्तन या अपवर्तन
(5) दूर तथा पास की वस्तुओं को देखना
(6) रेटिना पर छोटा और उल्टा प्रतिबिंब बनना
(7) शंकु तथा शलाकाओं के कार्य

इसे निम्न दो भागों में बांटतें हैं :
- शंकुओं के कार्य और रंग की क्रियाविधि
- प्रकाश एवं छाया की क्रियाविधि में शलाकाओं का कार्य

इसे पुनः निम्न भागों में बांटतें हैं :-
- प्रकाश एवं छाया के प्रत्यक्षीकरण का सफल होना.
- प्रकाश एवं छाया के प्रत्यक्षीकरण का असफल होना.

(8) रोडोप्सिन का कार्य
(9) बाह्य और अतः नाभिकीय स्तर का कार्यात्मक कड़ी के रूप में कार्य करना
(10) रंजक स्तर का कार्य
(11) मैकुला ल्यूटिया तथा फोबिया सेन्ट्रेलिस
(12) दृष्टि तंत्रिका, उसकी किएज्मा तथा दृष्टि पथ.
(13) वस्तुओं का सीधा प्रतिबिंब बनना या देखना.

उपर्युक्त सभी भागों का वर्णन क्रमानुसार निम्न लिखित है :-

(1) कैमरे तथा आंख की कार्य विधि में समानता - चूंकि आंख और कैमरा रचना की दृष्टि से लगभग समान होते हैं, इसलिए उनकी कार्यविधि में भी कुछ-कुछ समानताएं होती हैं. इसकी कार्यविधि की समानताओं को हम निम्न बिंदुओं द्वारा बहुत आसानी से समझ सकते हैं.

(अ) आंखों के अंगों तथा कैमरा के भागों में समानता - कैमरे में लगा हुआ शटर आंखों की पलकों (Eyelids) से समानता रखता है और वही कार्य करता है, जो आंखों में

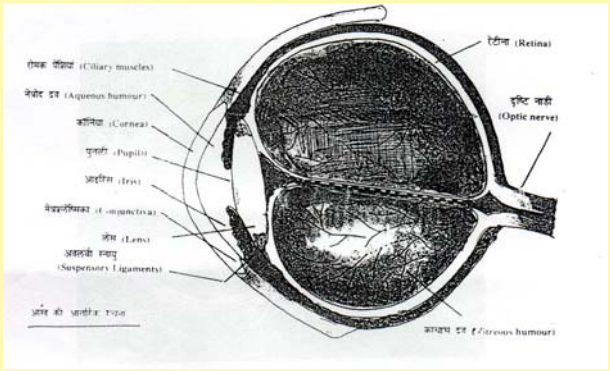

आंख की अंदरूनी संरचना

पलके करती हैं. आंखों में पाया जाने वाला कॉर्निया प्रकाश के लिए कैमरे की खिड़की की तरह कार्य करती है. पुतली का परदा भीतर प्रवेश करने वाले प्रकाश की मात्रा को नियंत्रित करती है. कैमरे का लेंस एवं आंखों का लेंस दोनों ही सर्वप्रथम सामने आते हैं. दोनों में लेंस से प्रकाश की किरणें फोकस होती हैं. मध्य पटल (Choroids), कैमरा के प्रकाश रोधक डिब्बे की ब्लेक वॉल की तरह कार्य करता है, जिससे नेत्र गोलक, अक्षीय गोलक Eye Ball के अभ्यांतर में एक अंधकारमय कक्ष तैयार होता है और प्रकाश के प्रति संवेदन शील फोटोग्राफिक प्लेट रेटिना के समान कार्य करती है.

(ब) रेटीना और प्रकाश सुग्राही प्लेट में समानता : जैसा कि हम जानते हैं कि कैमरे के सामने जो वस्तु रहती है, कैमरे के दृश्यपटल पर उसका उल्टा प्रतिबिंब बनता है, ठीक उसी प्रकार से हमारी आंखें भी कार्य करती हैं. आंखों में दृष्टिपटल या रेटिना पर ये कार्य होता है. वस्तु से निकलने वाली प्रकाश किरणें नेत्रोद्रव, लेंस और नेत्रोद काचाभ से गुजरते हुये रेटिना या दृष्टिपटल पर पड़ती है. ये तीनों एक अपवर्तन माध्यम का कार्य करती हैं. लेंस तथा स्वच्छ पटल, प्रकाश की समांतर किरणों को रेटिना पर केंद्रिभूत करने में मदद करते हैं.

(2) केंद्रीकरण - कैमरे में लेंस और फोकस बिंदु की दूरी निश्चित होती है और लेंस को आगे-पीछे खिसकाकर प्लेट पर वस्तु का स्पष्ट प्रतिबिंब डाला जाता है अर्थात जिस प्रकार इसमें लेंस को आगे पीछे खिसकाया जाता है उसी प्रकार आंखों में भी यह क्रिया होती है. आंखों में लेंस तथा रेटिना की दूरी निश्चित होती है. आंखों में लेंस की फोकस दूरी को मांसपेशियों की संकुचन क्रिया द्वारा बदल कर वस्तु के स्पष्ट प्रतिबिंब को रेटिना पर प्राप्त किया जाता है.

(3) दृष्टि मुद्राओं का बनना :- दृष्टि तंत्रिका द्वारा प्रतिबिंब की विस्तृत सूचना प्रमस्तिष्क (cerebrum) में पहुंचती है, जहां यह चेतना में विकसित होती है. इस प्रकार दृष्टितंत्रिका द्वारा संवेदना मस्तिष्क के दृष्टि केंद्र में पहुंचती है, फलस्वरूप मस्तिष्क को देखने की अनुभूति होती है. मस्तिष्क उल्टे प्रतिबिंब को स्वयं सीधा करके समझ लेता है. अर्थात आंखे केवल देखने का माध्यम है, परंतु देखने का कार्य वास्तविक रूप से मस्तिष्क ही करता है. मस्तिष्क के दृष्टि केंद्र में ही प्रकाश किरणों द्वारा लाई गई छवि का विश्लेषण होता है तथा हमें उस वस्तु के स्वरूप का ज्ञान होता है. इस तरह पूरी आख कैमरे की तरह कार्य करती है.

(4) प्रकाश किरणों का परावर्तन या अपवर्तन - प्रकाश की किरणें जब अपने मार्ग में चलती है तो भौतिक नियमों का पालन करते हुए आगे बढ़ती है. सर्वप्रथम पड़ने वाले कुछ प्रकाश का भाग परावर्तित होता है. इसके पश्चात शेष प्रकाश आगे की ओर बढता है. प्रकाश किरणों का परावर्तन किसी तल या ठोस समतल सतह से होता है. एक माध्यम से दूसरे माध्यम में जाने पर प्रकाश किरणों का अपवर्तन (Refraction) हो जाता है. इसका तात्पर्य है, कि इन रेखाओं का दोनों माध्यमों के संगम स्थल पर मार्ग बदल जाता है. मार्ग में जितने भी मुड़े हुये तल होते है उन पर भी किरणों का मार्ग बदलता है. लेंस की उत्तलता (Convexcity) अथवा अवतलता (Concavity) को पार करके प्रकाश किरणें लेंस के दूसरी ओर पहुंचकर एक दूसरे के समीप होकर एक केंद्र पर मिल जाती है. जिसको अभिबिंदुता (Convergence) कहते हैं. किसी-किसी अवस्था में ये एक दूसरे से दूर भी होती है. इसको उपबिंदुता (Divergence) कहते हैं. प्रत्येक मुड़े हुए तल का एक अक्ष होता है, इसी अक्ष से होकर किरण की रेखाएं सीधी जाती हैं, परंतु ऐसी रेखाएं जो अक्ष के ऊपर या नीचे उसके समांतर मुड़े हुए तल पर टकराती हैं, उनका परावर्तन होता है और वे तल की दूसरी ओर मुड़ कर कहीं पर अक्ष से मिल जाती है. और यह स्थान किरण केंद्र या फोकस कहलाता है. प्रत्येक लेंस में आगे और पीछे एक फोकस होती है. इन्हीं फोकसों पर प्रतिबिंब बनता है. दृश्य या छवि को केंद्रित करने के लिए ऊपर बताई गई विधि के अनुसार मांसपेशियों की सहायता से फोकस दूरी निश्चित कर प्रतिबिंब प्राप्त किया जाता है.

(5) दूर तथा पास की वस्तुओं को देखना - नेत्र में लेंस की रचना ऐसी होती है कि इसकी अपवर्तनांक शक्ति घट और बढ़ सकती है. नेत्र में प्रवेश करने वाली सभी प्रकाश किरणों को रेटिना पर केंद्रित होने के लिए झुकने की आवश्यकता होती है. दूर की वस्तुओं को देखने के

लिए उनसे आने वाले प्रकाश को अधिक अपवर्तन की आवश्यकता होती है. दूर की वस्तुओं को देखने के लिए सिलिएरी पेशी शिथिल होकर लेंस से संलग्न तंतुओं के ऊपर अपने खिचाव को बढ़ा देती है, जिससे लेंस अधिक पतला हो जाता है, अर्थात उसकी उत्तलता कम हो जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप लेंस की अपवर्तक शक्ति भी कम हो जाती है. इसके विपरीत पास की वस्तुओं को देखने के लिए सिलिएरी पेशी संकुचित हो जाती है और तंतुओं (Suspensary) पर इसका खिंचाव कम हो जाता है तथा लेंस की अग्रसतह आगे को निकल आती है, जिससे उसकी उत्तलता बढ़ जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप उसकी अपवर्तन शक्ति भी बढ़ जाती है. पास की वस्तुएं देखने से सिलिएरी पेशी के निरंतर प्रयोग में आने से आंखें जल्दी थक जाती हैं.

(6) रेटिना पर छोटा और उल्टा प्रतिबिंब बनना : प्रकाश की किरणें लेंस से अपवर्तित हो जाती हैं जैसा कि बतलाया गया है कि आंख-रेटिना कैमरे-वस्तु जैसे ही (प्रकाश सुग्राही प्लेट) होती है. देखी जाने वाली वस्तुएं रेटिना में प्रकाश सुग्राही प्लेट की भांति छोटी तथा उल्टी प्रकट होती है. इस प्रकार रेटिना पर छोटा एवं उल्टा प्रतिबिंब बनता है.

(7) शंकु एवं शलाकाओं के कार्य :- शंकु और शलाकाएं (Cones and Rods) प्रकाश सुग्राही (Photo recepter) कोशिकाएं होती हैं. इनमें शंकु पिरामिड के आकार का तथा शलाका बेलनाकार होता है. शंकु और शलाकाएं (कोन्स एंड रॉड्स) प्रकाश के प्रति संवेदनशील होते हैं. जब ये प्रकाश से उत्तेजित होते हैं, तो उससे उत्पन्न आवेगों को तंत्रिका कोष में भेजते हैं. जहां से उनका संवहन ऑप्टिक नर्व द्वारा मस्तिष्क में होता है. इनके कार्य और कार्यविधियों को निम्न बिंदुओं के अंतर्गत विस्तार से समझ सकते हैं.

शंकु के कार्य और रंग की क्रियाविधि :- दृष्टि पटल के फोविया सेन्ट्रेलिस नामक भाग में शंकुओं की संख्या सबसे अधिक होती है. यह वह भाग होता है जो दृष्टि की तीव्रता से संबंधित रहता है और जहां से दृष्टि के प्रतिबिंब की सभी सूक्ष्म एवं अति सूक्ष्म जानकारियों का प्रत्यक्षीकरण होता है. मानव में इस स्थान पर केवल शंकु (Cones) ही होते हैं. इस स्थान के कोन्स अन्य स्थान के कोन्स या रॉड्स से भिन्न होते हैं. इनसे रंग का बोध होता है. मानव दृष्टि पटल रेटिना के अन्य सभी भागों में रॉड्स और कोन्स मिश्रित रूप में रहते हैं. किंतु फॉबिया सेंट्रेलिस से दूरी बढ़ने के साथ-साथ, कोन्स की संख्या में कमी होती है, और जैसे-जैसे कोन्स कम होते जाते हैं, वैसे-वैसे उस स्थान पर रॉड्स की संख्या अधिक होती जाती है.

शंकु (Cones), जो कि रंगों की पहचान के लिए उत्तरदायी होती है तथा शलाकाएं (रॉड्स) जो कि रंगों का विभेदीकरण नहीं कर पाती है, ये दोनों संपूर्ण रेटिना पर समान रूप से वितरित नहीं रहती है. प्रत्येक आंख में लगभग 700 मिलियन कोन्स एवं 100 मिलियन रॉड्स होते है. फोबिया क्षेत्र में कोन्स घने रूप में स्थित होती है. वहां पर रॉड्स की संख्या बिल्कुल नहीं रहती है तथा कोन्स की संख्या यहां अन्य जगह पाये जाने वाले कोन्स की अपेक्षा स्पष्ट रहती है. रेटिना के किनारों पर कोन्स भी पाये जाते हैं. दृष्टि बिम्ब जो कि फोबिया सेन्ट्रेलिस नामक स्थान पर बनता है, वहां 126 मिलियन अलग-अलग बिंदु बनते हैं. स्पष्ट और सुंदर प्रतिबिंब के लिए यह क्रिया उतनी ही आवश्यक है जैसे कि कागज पर चित्र छापते समय चित्र के असंख्य पृथक बिंदुओं को बांटा जाता है. बिंदु जितने अधिक होते है चित्र उतना ही सुंदर छपता है.

प्रकाश एवं छाया की क्रियाविधि में शलाकाओं का कार्य : इस क्रिया विधि को हम निम्न बिंदुओं के अंतर्गत बड़ी अच्छी तरह से समझ सकते हैं -

प्रकाश एवं छाया के प्रत्यक्षीकरण का सफल होना : शलाकाओं का संबंध केवल प्रकाश एवं अंधेरे से ही रहता है. इनसे रंग की संवेदना नहीं होती है. परंतु ये प्रकाश के लिए अत्याधिक संवेदनशील होते हैं. यहां तक कि जब प्रकाश की तीव्रता कम रहती है, तब भी इनकी संवेदनशीलता अधिक रहती है. शलाकाओं के माध्यम से ही हम कम प्रकाश में भी वस्तुओं को देख पाते हैं. कोन्स को उद्दीप्त या उत्तेजित होने के लिए अत्याधिक तीव्र प्रकाश का होना बहुत जरूरी है. अर्थात इसकी प्रभाव सीमा बहुत उच्च होती है. यही कारण है कि हल्की सी प्रदीप्त वस्तु जैसे छोटे तारे हम आंख से सीधे कोण से नहीं देख पाते, परंतु हम यदि आंख को घुमाकर एक कोण से देखते हैं तो दिखाई दे जाता है. क्योंकि ऐसी स्थिति में ही प्रतिबिंब या इमेज फोबिया सेंट्रेलिस पर बनते हैं, जहां रॉड्स की सहायता से उन्हें देखा जा सकता है अर्थात रॉड्स कम प्रकाश में भी उत्तेजित हो जाती है. और हम वस्तुओं को देख पाते हैं जबकि कोन्स अधिक प्रकाश में उत्तेजित होती है.

प्रकाश एवं छाया के प्रत्यक्षीकरण का असफल होना: कोन्स या शंकुओं का कम प्रकाश में सही ढंग से कार्य न कर पाना अर्थात शीघ्रता से उत्तेजित न हो पाने के कारण तथा रॉड्स का रंगों से प्रत्यक्षीकरण न हो पाने के कारण

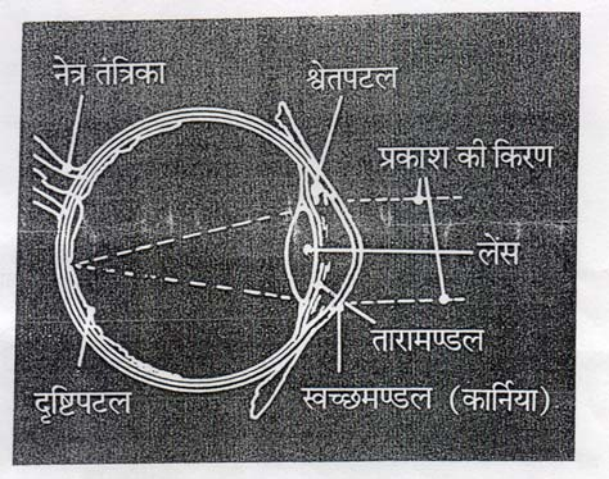

इस रेखाचित्र में बतलाया गया है कि कैमरा और आंख की कार्य विधि में समानता होती है.

हम रंगों को सही ढंग से नहीं देख पाते है और रंग एवं प्रकाश के प्रति अंधता उत्पन्न हो जाती है. इसलिए ऐसी स्थिति में शाम के समय में अपने आस-पास की सभी वस्तुएं छायामयी, धुंधली सी या सफेद धूसर, मिलेजुले रंग की या काली दिखाई देने लगती है रॉड्स यद्यपि रंग के प्रति असंवेदनशील होती है फिर भी यदि उनके सामने हरे, नीले और पीले रंग की वस्तुएं आती हैं तो वे उत्तेजित हो जाती हैं परंतु वस्तुएं धूसर दिखाई देती हैं. लाल प्रकाश रॉडस को बिल्कुल भी उत्तेजित नहीं कर पाता है. अतः किसी प्रकार की दृष्टि उत्तेजना न होने पर वह रंग हमें केवल काला ही दिखाई देता है.

(8) रॉडोप्सिन का कार्य : रॉडोप्सिन नामक रसायन प्रकाश की उपस्थिति में विरंजित होकर पीले रंग का पदार्थ बन जाता है तथा और अधिक उद्भासन से यह विटामिन ए और प्रोटीन में बदल जाता है. रोडोप्सिन का प्रकाश की उपस्थिति में उत्तेजित होता उदभासन कहलाता है. उपरोक्त, बाद वाले उत्पादन, रंगहीन होते हैं. उनके बारे में ऐसा अनुमान है कि ये प्रकाश से ही विरंजित होते हैं. अंधकार में विटामिन 'ए' तथा प्रोटीन विज़ुअल परपल या नीललोहित में बदलता है. नीललोहित तीव्र प्रकाश से विरंजित हो जाता है. इस प्रकाश रासायनिक परिवर्तन के कारण ही रॉड्स, दृष्टि संग्राहक के रूप में कार्य करते हैं.

इस प्रकार से प्रकाश के प्रति संवेदनशील पदार्थ के परिवर्तन से दृष्टि पटल की तंत्रिका कोशिकाओं में आवेग उत्पन्न होते हैं, इसलिए विटामिन 'ए' की रक्त परिसंचरण के द्वारा निरंतर आपूर्ति, दृष्टि पटल तक होती रहनी चाहिए ताकि विज़ुअल परपल का निर्माण हो सके. क्योंकि विटामिन की कुछ मात्रा विरंजन क्रिया में नष्ट हो जाती है.

यही कारण है कि जिन व्यक्तियों को आहार या विटामिन 'ए' का अभाव रहता है ये क्षीण या कम प्रकाश में देखने में असमर्थ रहते हैं अर्थात उन्हें रतौंधी (Night Blindness) नामक रोग हो जाता है.

(9) बाह्य और अंतःनाभिकीय स्तर का कार्यात्मक कड़ी के रूप में कार्य : बाह्य एवं अंतः नाभिकीय स्तर की स्थिति शलाकाएं और शंकु स्तर एवं रंजक कोशिका स्तर के मध्य रहती है. ये बाह्य और आंतरिक स्तर असंख्य तांत्रिक कोशिकाओं से बनते हैं, जो रॉड्स और कोन्स स्तर एवं रंजक कोशिकाओं स्तर के मध्य में कार्यात्मक कड़ी के रूप में कार्य करती है.

नाभिकीय स्तर, एक अलग स्तर है और इसकी तंत्रिका कोशिकाओं के एक्जान, रंजक कोशिका के डेन्ड्रांस से जुड़ते हैं. नाभिकीय स्तर की कोशिका के डेन्ड्रांस और कोन्स की उत्तेजना के आवेग, रंजक कोशिका में पहुंचते हैं और वहां से एक्जान के द्वारा दृष्टि तंत्रिका से होते हुए मस्तिष्क को पहुंचते हैं.

(10) रंजक (वर्णक) स्तर का कार्य : रंजक कोशिका स्तर में अनियमित आकार की कोशिकाएं होती हैं, जिसमें गहरे रंग के रंजक कणिकाएं होते हैं. ये शलाकाओं और शंकुओं के स्तर के बाह्य छोर पर मध्य पटल के समीप रहते हैं. रंजक स्तर का मुख्य कार्य आंख के भीतर कक्ष को गहरा रंग प्रदान करना है. जिससे दृष्टि पटल पर प्रतिबिंब अच्छा बन सके और किसी अन्य ओर से प्रकाश की किरणें प्रवेश करके प्रतिबिंब को धुंधला न करने पाये. ये स्तर भी कैमरे के भीतरी भाग के काले रंग के समान ही काम करती है.

रॉड्स और कोन्स को उत्तेजित करने के लिए, प्रकाश, दृष्टि पटल के वर्णक स्तर के अतिरिक्त सभी स्तरों को पार करके वहां पहुंचता है. तेज प्रकाश से वर्णक नष्ट हो जाते हैं और इन्हें पुनः बनने में कुछ समय लगता है. यही कारण है कि कुछ देर तक तेज प्रकाश में रहने के बाद हम तुरंत कम प्रकाशित कमरे में आते हैं तो वहां घोर अंधकार दिखाई देता है. परंतु कुछ देर में वर्णक पुनः बन जाते हैं और अंधकार की मात्रा कम होती चली जाती है और वस्तुएं धीरे धीरे दिखाई देने लगती है. सिनेमा शुरू हो जाने पर सिनेमा हाल में प्रवेश करने पर प्रायः सभी को इस बात का निजी अनुभव होता है. कुछ देर बाद उसी अंधकार पूर्ण स्थान की बहुत सी चीजें स्वतः दिखाई देने लगती हैं.

(11) मैकुला ल्यूटिया तथा फोबिया सेन्ट्रेलिस और अंधबिंदु : जागृत अवस्था में आंखें बराबर गतिशील रहती

हैं. गति दायें से बायें तथा ऊपर से नीचे होती हुई दिखाई देती है. इन गतियों का प्रमुख उद्देश्य है कि किसी वस्तु का विम्ब, दृष्टि पटल के उस भाग पर पड़े जिसमें और अधिक दृष्टिक्षमता रहती है. इस दृष्टि क्षेत्र से परे वाली वस्तुएं कुछ परे दिखाई देती है. वह भाग जिस पर प्रतिबिंब बनता है और जहां अत्यधिक तीक्ष्ण दृष्टि रहती है वहां एक छोटा सा बिंदु या स्थान होता है, जिसे मैक्युला ल्यूटिया कहते हैं मैक्यूला ल्यूटिया के बीच में एक छोटा सा गड्ढा रहता है, जिसे फोबिया सेन्ट्रेलिस कहते हैं. जैसा कि बतलाया गया है, इसमें केवल कोन्स ही रहते हैं, जिससे कम प्रकाश में कम दिखाई देता है. मनुष्य में यह स्थान केवल 1/2 मि.मी. का होता है. परंतु इसका कार्य ऐसा है जो संसार के इतने अधिक विस्तृत क्षेत्र का स्पष्ट चित्र छोटे से बिंदु पर केंद्रित करके बना देता है और हमें सब कुछ स्पष्ट दिखाई देता है. मेकुला ल्यूटिया दृष्टिनाड़ी के प्रवेश वाले स्थान के बगल वाले भाग में स्थित होता है. उस स्थान पर जहां दृष्टिनाड़ी, नेत्र गोलक में प्रवेश करती है, वहां रॉड्स और कोन्स नहीं होते. इसलिए जब इस स्थान पर प्रकाश पड़ता है, तो कोई संवेदना उत्पन्न नहीं होती. इस स्थान से हम कुछ नहीं देख पाते. इस स्थान को **ब्लाइंड स्पाट या अंध बिंदु** कहते हैं. रेटिना के सभी भाग प्रकाश की किरणों से प्रभावित होते हैं, लेकिन अंधबिंदु पर प्रकाश का कोई प्रभाव नहीं पडता.

(12) दृष्टि तंत्रिका, किएज्मा तथा दृष्टि पथ : दृष्टिनाड़ी नेत्र गोलक के पश्च भाग से निकलती है और सामने पिट्यूटरी बॉडी के पास मिलती दिखाई देती है. इस स्थान पर दृष्टिनाड़ी (ऑप्टिक नर्व) के आधे-आधे नर्व फाइबर्स एक दूसरे को क्रॉस कर आगे की ओर बढ़कर चले जाते हैं. इस क्रासिंग प्लेस को ऑप्टिक किएज्मा के नाम से जाना जाता है. शेष ऑप्टिक नर्व फाइबर्स ऑप्टिक ट्रेक्ट्स (Optic Tracts) कहलाता है और दोनों तरफ बिना एक दूसरे को क्रॉस किये हुए मध्य मस्तिष्क में चले जाते हैं.

अब न्यूरान्स के द्वारा दृष्टि आवेग, सेरीब्रल हेमीस्फियर के ऑक्सीपिटल लोब के ऑप्टिक सेन्टर तक भेजे जाते हैं. यहां पर दृष्टि का विश्लेषण होता है. इस प्रकार दायां ऑक्सीपिटल लोब, बायीं ऑप्टिक नर्व के बाहर वाले आधे भाग के फाइबर्स के आवेगों को तथा दायी आंख की ऑप्टिक नर्व के बाहर वाले आधे भाग के फाइबर्स के आवेगों को ग्रहण करता है.

इसके ठीक विपरीत बायां ऑक्सीपिटल लोब, दांयी आंख की दृष्टिनाड़ी के भीतर वाले भाग के सूत्रों के आवेगों को तथा बांयी आंख की ऑप्टिक नर्व के भीतर वाले आधे भाग के फाइबर्स के आवेगों को ग्रहण करता है. इससे इस तथ्य का पता चलता है कि एक ओर के ऑक्सीपिटल लोब अथवा एक ओर के ऑप्टिक ट्रेक्ट के आधे भाग में आधी दृष्टि हीनता उत्पन्न होगी या होती है. इस प्रकार इन आवेगों का आदान-प्रदान होता है तथा हमें दायें या बायें तरफ का भी ज्ञान हो जाता है.

(13) वस्तुओं का सीधा प्रतिबिंब बनना या देखना : प्रकाश किरणें, रेटिना या दृष्टिपटल पर पहुंचकर रॉड्स एवं कोन्स में विद्यमान प्रकाश सुग्राही वर्णकों में रासायनिक परिवर्तन लाकर, रोड्स और कोन्स को उदीप्त करती है. इससे तंत्रिका आवेग (Nerve Impules) निकलते हैं, जो ऑप्टिक नर्व द्वारा मस्तिष्क के ऑक्सीपिटल लोब के सेरीब्रल कार्टेक्स में पहुंचते हैं और उसके दृष्टि क्षेत्र में संवेदनाएं उत्पन्न होती है. इससे जो वस्तु हमें रेटिना पर उल्टी और अपेक्षाकृत छोटी दिखाई देती थी, उसी वस्तु का इस स्थान पर सीधा और वास्तविक प्रतिबिंब बन जाता है. इससे वस्तु सीधी दिखाई देने लगती है.

इस प्रकार उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट होता है कि देखने की प्रक्रिया में आंखों के अनेक रंगों के साथ-साथ मस्तिष्क का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है. इस प्रकार आंखों के देखने की क्रिया पूर्ण होती है और यह क्रिया जीवित आंख में निरंतर चलती रहती है.

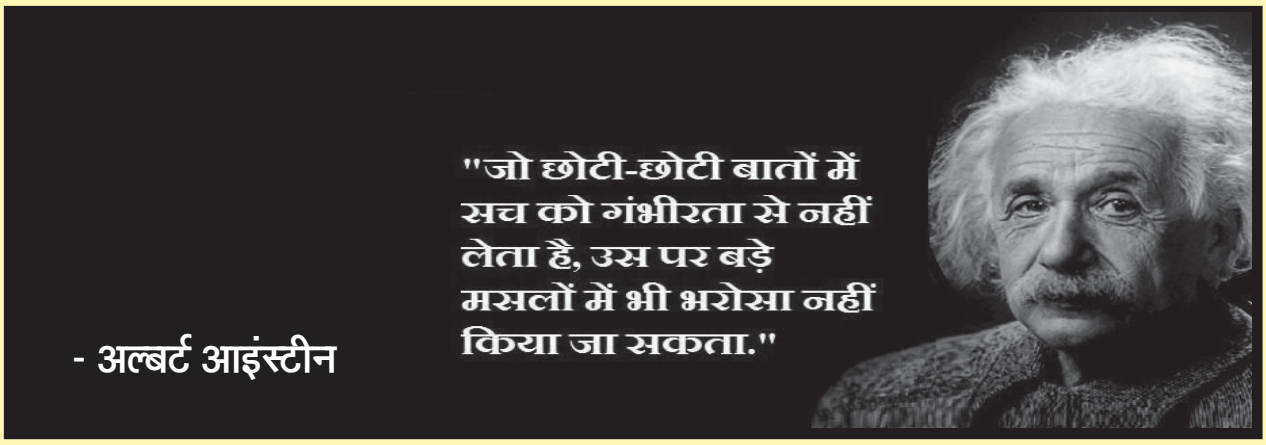

राष्ट्र सेवा में अंतरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी

वाई.के. दीक्षित
विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र , भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो)

अंतरिक्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास ने भारत में जीवन के हर क्षेत्र को छुआ है. ऐसा प्रतीत होता है जैसे जनता के लाभ के लिए प्रौद्योगिकी विकसित की गई है. इसकी जीवंत उपस्थिति न केवल भारत में बल्कि विश्वस्तर पर अनुभव की जाती है. अपने सफल प्रयासों के माध्यम से भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो), निम्नलिखित दृष्टिकोण और मिशन को अपनाकर अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में सर्वव्यापी बन गया है :

♦अंतरिक्ष विज्ञान अनुसंधान और ग्रहों की खोज के साथ-साथ राष्ट्रीय विकास के लिए स्पेस टेक्नोलॉजी का विकास.

♦अंतरिक्ष तक पहुंच प्रदान करने के लिए प्रक्षेपण वाहनों के डिजाइन और संबंधित प्रौद्योगिकियों का विकास.

♦पृथ्वी अवलोकन, संचार, नेविगेशन, मौसम विज्ञान और अंतरिक्ष विज्ञान के लिए उपग्रहों और संबंधित प्रौद्योगिकियों का विकास.

♦दूरसंचार, टेलीविजन प्रसारण और विकास अनुप्रयोगों को पूरा करने के लिए भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह (INSAT) कार्यक्रम.

♦अंतरिक्ष आधारित इमेजरी का उपयोग करके प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन और पर्यावरण की निगरानी के लिए भारतीय रिमोटसेंसिंग सैटेलाइट (आईआरएस) कार्यक्रम.

♦सामाजिक विकास के लिए अंतरिक्ष आधारित अनुप्रयोग.

♦अंतरिक्ष विज्ञान और ग्रहों की खोज में अनुसंधान और विकास.

उपरोक्त दृष्टिकोण और मिशन को निम्नलिखित उद्देश्यों के माध्यम से पूरा किया जाता है.

1. ध्रुवीय उपग्रह लॉन्च वाहन (पीएसएलवी) की परिचालन उड़ानें.
2. भू-सिंक्रोनस सैटेलाइट लॉन्च वाहन (जीएसएलवी-एमके II) की विकासशील उड़ान.
3. भारी लिफ्ट का विकास भू-सिंक्रोनस सैटेलाइट लॉन्चवाहन (जीएसएलवी-एमके III).
4. संचार उपग्रहों के डिजाइन, विकास और निर्माण.
5. पृथ्वी निरीक्षण उपग्रहों के डिजाइन, विकास और निर्माण.
6. नेविगेशन सैटेलाइट सिस्टम का विकास.
7. अंतरिक्ष विज्ञान और ग्रह अन्वेषण के लिए उपग्रहों का विकास.
8. पृथ्वी निरीक्षण अनुप्रयोग.
9. सामाजिक अनुप्रयोगों के लिए अंतरिक्ष आधारित प्रणाली.
10. उन्नत तकनीक और नई पहल.
11. प्रशिक्षण, क्षमता निर्माण और शिक्षा.
12. अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी का प्रचार.
13. अंतरिक्ष अनुसंधान के लिए बुनियादी ढांचा / सुविधा विकास.
14. अंतर्राष्ट्रीय सहयोग.

प्रारंभ एवं उपलब्धियां : 1960 के दशक के प्रारंभ में अंतरिक्ष अनुसंधान गतिविधियों को हमारे देश में शुरू किया गया था, जब उपग्रहों का उपयोग करनेवाले अनुप्रयोग संयुक्त राज्य अमेरिका में भी प्रयोगात्मक चरणों में थे. अमेरिकन सैटेलाइट 'सिंकॉम -3' द्वारा प्रशांत क्षेत्र में टोक्यो ओलंपिक खेलों के लाइव ट्रांसमिशन के साथ संचार उपग्रहों की शक्ति का प्रदर्शन करते हुए, भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के संस्थापक डॉ. विक्रम साराभाई ने भारत के लिए अंतरिक्ष प्रौद्योगिकियों के लाभों को तुरंत पहचान लिया.

डॉ.साराभाई इस विचार से पूर्ण आश्वस्त थे कि अंतरिक्ष संसाधनों के विकास में मनुष्य और समाज की वास्तविक समस्याओं का समाधान करने की अपूर्व क्षमता है. अहमदाबाद में स्थित भौतिक शोध प्रयोगशाला (पीआरएल) के निदेशक के रूप में, डॉ. साराभाई ने भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम का

थुंबा में स्थित मैरीमैगडालेन चर्च
(यहां भारतीय युवा वैज्ञानिकों ने हमारे पहले रॉकेट का एकीकरण एवं निर्माण प्रारंभ किया था)

नेतृत्व करने के लिए देश के सभी कोनों से सक्षम और प्रतिभा संपन्न वैज्ञानिकों, मानव विज्ञानी, संवाददाताओं और सामाजिक वैज्ञानिकों की एक सेना बुनाई.

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम को इसके स्थापना के बाद से ही दूरदृष्टि द्वारा व्यवस्थित एवं विकसित किया गया है इसमें तीन अलग-अलग तत्व थे-जैसे संचार, दूरस्थ संवेदन, अंतरिक्ष परिवहन प्रणाली और अनुप्रयोग कार्यक्रमों के लिए उपग्रह. इंस्कोस्पार (स्पेस रिसर्च के लिए भारतीय राष्ट्रीय समिति) डॉ.साराभाई और डॉ.रामनाथन के नेतृत्व में शुरू की गई थी.1967 में, अहमदाबाद में स्थित पहला प्रायोगिक उपग्रह संचार पृथ्वी स्टेशन (ईएससीईएस) कार्यान्वित किया गया था, जो भारतीय और अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिकों और इंजीनियरों के लिए एक प्रशिक्षण केंद्र के रूप में भी प्रयोग में लाया गया.

1977-79 में फ्रैंको-जर्मन सिम्फनी उपग्रह का उपयोग करते हुए इसरो ने पोस्ट एवं टेलीग्राफ विभाग (पी एंड टी) के संयुक्त तत्वावधान में सैटेलाइट दूरसंचार प्रयोग परियोजना (एसटीईपी) का कार्यान्वयन किया था. टीवी पर केंद्रित एसआईटीई - साइट (Satellite Instructional Television Experiment - SITE) के एक अनुक्रम के रूप में अवधारित एसटीईपी, दूरसंचार प्रयोगों के लिए था. एसटीईपी का उद्देश्य घरेलू संचार के लिए भू-समकालिक उपग्रहों का उपयोग करने, विभिन्न ग्राउंड सेगमेंट सुविधाओं के डिजाइन, निर्माण, स्थापना, संचालन और रखरखाव की क्षमताओं और अनुभव में वृद्धि और प्रस्तावित घरेलू उपग्रह प्रणाली के परिचालन के लिए आवश्यक स्वदेशी क्षमता का निर्माण करने का एक परीक्षण सिस्टम प्रदान करना था. आईएनएसएटी, साइट के बाद 'खेड़ा कम्युनिकेशंस प्रोजेक्ट (केसीपी)' का प्रयोग किया गया, जो गुजरात राज्य के खेड़ा जिले में आवश्यकता आधारित और स्थान विशिष्ट कार्यक्रम संचरण के लिए एक फील्ड प्रयोगशाला के रूप में काम करता था. केसीपी को 1984 में ग्रामीण संचार दक्षता के लिए यूनेस्को-आईपीडीसी (संचार के विकास के लिए अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम) पुरस्कार से सम्मानित किया गया था.

इस अवधि के दौरान, पहला भारतीय अंतरिक्ष यान 'आर्यभट्ट' विकसित किया गया था और इसे सोवियत लॉन्चर का उपयोग करके लॉन्च किया गया था. एक अन्य प्रमुख क़ीर्तिस्तंभ प्रथम लॉन्च वाहन एसएलवी-3 का विकास था, जिसमें निम्न पृथ्वी कक्षा (एलईओ) में 40 कि.ग्रा. का उपग्रह प्रस्थापित करने की क्षमता थी. इसकी पहली सफल उड़ान 1980 में हुई थी. एसएलवी-3 कार्यक्रम के माध्यम से, क्षमता का निर्माण किया गया था, जिसमें समग्र वाहन डिजाइन, मिशन डिजाइन, सामग्री, हार्डवेयर फैब्रिकेशन, ठोस प्रणोदन प्रौद्योगिकी, नियंत्रण बिजली संयंत्र, एवियानिक्स, वाहन एकीकरण चेक आउट और लॉन्च ऑपरेशंस शामिल है. उपग्रह के कक्षा में उचित नियंत्रण और मार्गदर्शन प्रणाली के साथ बहुचरणी रॉकेट सिस्टम का विकास हमारे अंतरिक्ष कार्यक्रम में एक प्रमुख कीर्तिस्तंभ था.

80 के दशक के प्रयोगात्मक चरण में, उपयोगकर्ताओं के लिए संबंधित ग्राउंड सिस्टम के साथ अंतरिक्ष प्रणालियों के डिजाइन, विकास और कक्षा प्रबंधन में एंड-टू-एंड क्षमता का प्रदर्शन किया गया था. भास्कर प्रथम और द्वितीय मिशन रिमोट सेंसिंग क्षेत्र में अग्रणी कदम थे, जबकि एरियाने पैसेंजर पेलोड प्रयोग (एपीएलईई) भविष्य के संचार उपग्रह प्रणाली के लिए अग्रदूत बन गया. संवर्धित सैटेलाइट लॉन्च वाहन (एएसएलवी) के विकास ने स्ट्रैप-ऑन, बल्बस हीट शील्ड, बंद लूप मार्गदर्शन और डिजिटल ऑटो पायलट जैसे नए तकनीकों का भी प्रदर्शन किया. इसने जटिल मिशनों के लिए लॉन्च वाहन डिजाइन की कई बारीकियों को सीखने का मार्ग प्रशस्त किया, जिससे पीएसएलवी और जीएसएलवी जैसे परिचालन लॉन्च वाहनों की प्राप्ति के लिए रास्ता तय किया गया.

90 के दशक में परिचालन चरण के दौरान, दो व्यापक वर्गों के तहत प्रमुख अंतरिक्ष बुनियादी ढांचा बनाया गया था;-एक बहु-उद्देशीय भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह प्रणाली (आईएनएसएटी) के माध्यम से संचार, प्रसारण और मौसम विज्ञान के लिए और दूसरा भारतीय रिमोट सेंसिंग सैटेलाइट (आईआरएस) प्रणाली के लिए. इस चरण के दौरान ध्रुवीय उपग्रह लॉन्च वाहन (पीएसएलवी) का विकास और परिचालन, तथा भू-सिंक्रोनस सैटेलाइट लॉन्च वाहन (जीएसएलवी) का विकास महत्वपूर्ण उपलब्धियां थीं.

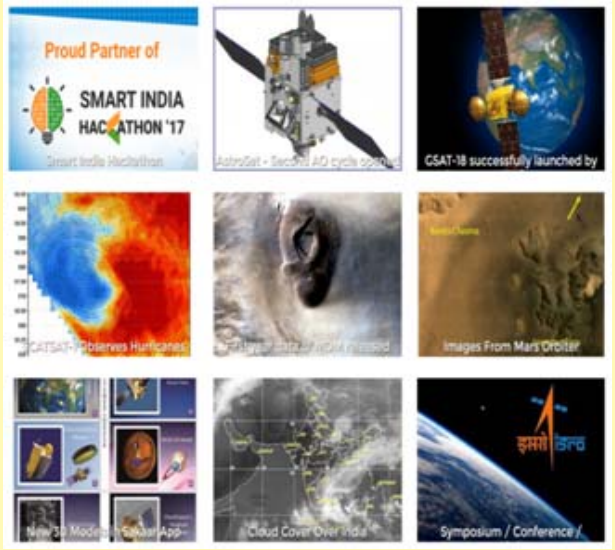

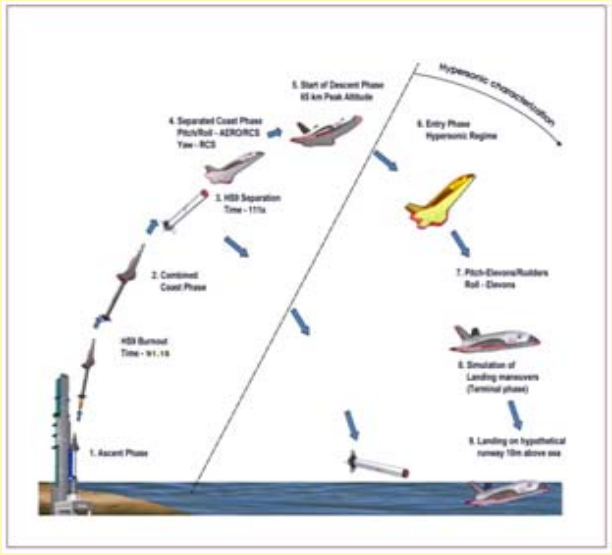

राष्ट्रसेवा में अंतरिक्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उपयोग.

विविध क्षेत्रों में अनुप्रयोग हेतु परियोजनाएं :

कृषि और मिट्टी

- फसल उत्पादन पूर्वानुमान
- नमकीन / सोडिक मिट्टी मैपिंग
- कृषि-मेट सेवाएं और आपदा निगरानी (कीट, बाढ़, सूखा)
- बागवानी विकास

जैव संसाधन और पर्यावरण

- वन कवर और प्रकार मैपिंग
- वेटलैंड सूची और संरक्षण योजनाएं
- जैव विविधता विशेषता

- रेगिस्तान स्थिति मैपिंग
- तटीय, मैंग्रोव, कोरल संबंधित योजनाएं
- बर्फ और हिमनद अध्ययन

कार्टोग्राफी / भूविज्ञान और खनिज संसाधन

- बड़े पैमाने पर मैपिंग
- सैटेलाइट आधारित टॉपो-मैप अपडेटेशन
- डिजिटल ऊंचाई मॉडल (कार्टो-डीईएम)
- कैडस्ट्रल स्तर मैपिंग
- भूस्खलन खतरे जोनेशन
- खनिज / तेल, खनन क्षेत्रों का अन्वेषण

- भूकंप-विवर्तनिक (Seismo-tectonic) अध्ययन
- इंजीनियरिंग और भू-पर्यावरण अध्ययन

महासागर और मौसम विज्ञान :

- महासागर प्राथमिक उत्पादकता
- महासागर की स्थिति का पूर्वानुमान

- तूफान वृद्धि मॉडलिंग
- क्षेत्रीय मौसम भविष्यवाणी
- ऊष्ण कटिबंधीय चक्रवात और मेसोस्केल अध्ययन
- विस्तारित रेंज मानसून भविष्यवाणी

ग्रामीण विकास

- राष्ट्रीय पेयजल मिशन

- वेस्टलैंड मैपिंग / अपडेटेशन
- वाटर शेड विकास और निगरानी
- भूमि अभिलेख आधुनिकीकरण योजना

शहरी विकास

- प्रमुख शहरों के शहरी फैलाव मानचित्रण
- मास्टर / संरचना योजनाएं

- चयनित शहरों / कस्बों की व्यापक विकास योजनाएं
- कस्बों के लिए बेसमैप पीढ़ी
- राष्ट्रीय शहरी सूचना प्रणाली

जल संसाधन

- सिंचाई आधारभूत संरचना मूल्यांकन
- जलसंसाधन सूचना प्रणाली

- जलाशय क्षमता मूल्यांकन
- हाइड्रो-पावर के लिए साइट चयन

प्राकृतिक संसाधन जनगणना :

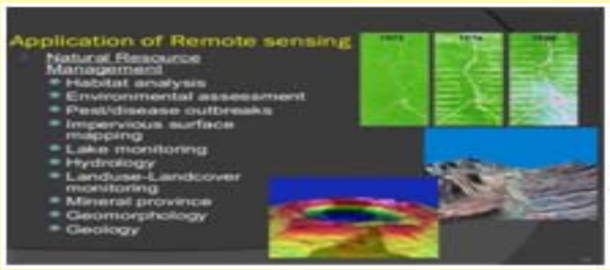

- एनआर जनगणना कार्यक्रम के तहत प्राकृतिक संसाधनों की आवधिक सूची
- भूमि उपयोग / भूमि कवर, मिट्टी, भू गर्भ विज्ञान,

- आर्द्र भूमि, भूमि अवक्रमण, बर्फ और हिमनद, वनस्पति

आपदा प्रबंधन सहायता

- बाढ़, चक्रवात, सूखे, भूस्खलन, भूकंप और जंगल की आग जैसी विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं को परिचालन से संबोधित करना
- प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली और निर्णय समर्थन

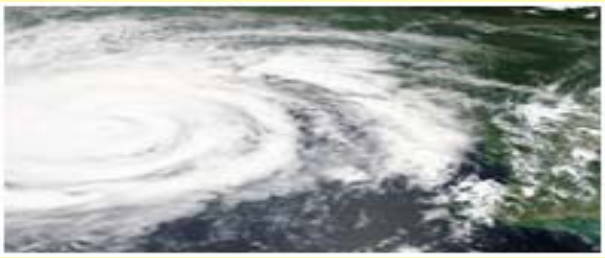

उपकरण पर अनुसंधान और विकास

सैटेलाइट संचार : कवरेज और आउटरीच के मामले में अद्वितीय क्षमताओं का फायदा उठाने के लिए टेलीविजन, डीटीएच ब्रॉड का स्टिंग, डीएसएनजी और वीएसएटी जैसे विभिन्न अनुप्रयोगो के लिए सैटेलाइट संचार उपयोग पूरे देश

में व्यापक प्रसार और सर्वव्यापी बन गया है. पिछले तीन दशकों में प्रौद्योगिकी काफी हद तक परिपक्व हो गई है और बड़ी संख्या में अनुप्रयोगों के लिए व्यावसायिक आधार पर इसका उपयोग किया जा रहा है.

सामाजिक अनुप्रयोगों के लिए प्रौद्योगिकी की संभावना इसरो को आकर्षित करना जारी रखती है और मानव जाति के सुधार के लिए प्रौद्योगिकी के लाभ उठाने के प्रयास जारी हैं. इसरो द्वारा सामाजिक विकास की दिशा में महत्वपूर्ण पहलों में टेली-एजुकेशन, टेली-मेडिसिन, ग्राम रिसोर्स सेंटर (वीआरसी) और आपदा प्रबंधन प्रणाली (डीएमएस) कार्यक्रम शामिल हैं. राष्ट्रीय विकास के अनुप्रयोगों के लिए अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी की संभावना बहुत बड़ी है.

सैटेलाइट समाचार संग्रहण और प्रसार : आईएनएसएटी

प्रणाली का उपयोग करके सैटेलाइट समाचार संग्रहण, तत्काल 'वास्तविक समय समाचार- आदान-प्रदान' की व्यवस्था करती है. इसमें अलग-अलग स्थानों पर घटित महत्वपूर्ण घटनाओं को दिल्ली या राज्य की राजधानियों के केंद्रीय स्टेशन पर उसके अन्य डीडी चैनलों पर तुरंत पुनः प्रसारण हेतु भेजा जाता है. प्रसार भारती में 14 सी-बैंड और 18 क्यू-बैंड डिजिटल आउटडोर-ब्रॉड कास्ट डिजिटल सैटेलाइट न्यूज़ गदरिंग (डीएसएनजी) टर्मिनल आईएनएसएटी के माध्यम से काम कर रहे हैं.सी-बैंड में 9 और डीएसएनजी नेटवर्क पेश किए जाने का प्रस्ताव है.

टेली-मेडिसिन : टेली-मेडिसिन सामाजिक लाभ के लिए अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के अद्वितीय अनुप्रयोगों में से एक है. 2001 में शुरू किया गया इसरो टेली-मेडिसिन कार्यक्रम भारतीय उपग्रहों के माध्यम से शहरों और कस्बों के प्रमुख विशिष्ट अस्पतालों को दूरस्थ / ग्रामीण / मेडिकल कॉलेज अस्पतालों और मोबाइल इकाइयों से जोड़ रहा है. इसरो टेली-मेडिसिन नेटवर्क में जम्मू-कश्मीर, लद्दाख, अंडमान और निकोबार द्वीपसमूह, लक्षद्वीप, उत्तर पूर्वी राज्य सहित विभिन्न राज्यों / क्षेत्रों को शामिल किया गया है. केरल, कर्नाटक, छत्तीसगढ़, पंजाब, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आंध्रप्रदेश,

बिहार में कोशीनदी बाढ़ के दौरान टेली-मेडिसिन मोबाइल वैन के माध्यम से स्वास्थ्य देखभाल का विस्तार.

महाराष्ट्र, झारखंड और राजस्थान के कई जनजातीय जिलों को टेली-मेडिसिन कार्यक्रम के अंतर्गत शामिल किया गया है. वर्तमान में, इसरो के टेली-मेडिसिन नेटवर्क में लगभग 384 अस्पताल शामिल हैं, जिनमें 60 विशेष अस्पतालों के साथ 306 रिमोट / ग्रामीण / जिला / मेडिकल कॉलेज और 18 मोबाइल टेली-मेडिसिन इकाइयां शामिल हैं. मोबाइल टेली-मेडिसिन इकाइयों ने ओप्थाल्मोलॉजी, कार्डियोलॉजी, रेडियोलॉजी, मधुमेह, मैमोग्राफी, सामान्य चिकित्सा, महिला और बाल स्वास्थ्य देखभाल के विभिन्न क्षेत्रों को कवर किया है. जबकि अंतरिक्ष विभाग (इसरो) टेली मेडिसिन सिस्टम सॉफ्टवेयर, हार्डवेयर और संचार उपकरण के साथ-साथ उपग्रह बैंडविड्थ, राज्य सरकारों और विशेष अस्पतालों को बुनियादी ढांचे, जनशक्ति और सुविधा समर्थन के अपने हिस्से के लिए धन आवंटित करना है. इस संबंध में, विभिन्न राज्य सरकारों, गैरसरकारी संगठनों, विशेष अस्पतालों और उद्योग के सहयोग से प्रौद्योगिकी विकास, मानकों और लागत प्रभावी प्रणालियों का विकास किया गया है. एमओयू के माध्यम से पार्टियों के बीच समझ लाने के लिए अंतरिक्ष राज्य सरकारों और विशेष अस्पतालों के साथ बातचीत करता है.

इसरो की सैटेलाइट सेना : आने वाले वर्षों में, भारत की अंतरिक्ष संपत्ति, सीमा संघर्षों के प्रबंधन के लिए एक बड़ी भूमिका निभाएगी. आज, भारत में पृथ्वी के चारों ओर कक्षा में 33 उपग्रह हैं और एक मार्टिन कक्षा में है. इनमें 12 संचार उपग्रह शामिल हैं; 7 नेविगेशन उपग्रह; 10 पृथ्वी अवलोकन उपग्रह और 4 मौसम निगरानी उपग्रह. यह एशिया प्रशांत क्षेत्र में उपग्रहों का सबसे बड़ा नक्षत्र है. प्रत्येक उपग्रह एक विशिष्ट उद्देश्य के लिए बना होता है और जब आवश्यक हो, तो भारत के सर्वोच्च राष्ट्रीय हितों की रक्षा में मदद करता है.

हाल ही में लॉन्च कार्टोसैट-2 श्रृंखला उपग्रह 526 किलोमीटर की दूरी से पाकिस्तान में हर वस्तु पर नजर रख सकता है और आसानी से पाक प्रधानमंत्री के भव्य हवेली में खड़ी

कार्टसैट - 2 के साथ पीएसएलवी सी - 34

कारों की संख्या को गिन सकता है. यह हर 1.5 घंटों में पृथ्वी के चारो तरफ घूमता है, जो एक 0.65-मीटर रिज़ॉल्यूशन के साथ स्कैन करता है और भारत को पाक या दुनियाभर में कहीं भी पार्क किए गए प्रत्येक टैंक, ट्रक और लड़ाकू विमान की गणना करने की अनुमति देता है. कार्टोसैट-2 श्रृंखला में 1 मिनट के वीडियो को कैप्चर करने की एक अनूठी क्षमता है, जो कि 37 किमी प्रतिसेकंड की विशाल गति के बावजूद, एक मिनट के लिए एक बिंदु पर ध्यान केंद्रित करने में सक्षम है. भारत पहले ही 25 सेमीरिज़ॉल्यूशन वाले उपग्रहों पर काम कर रहा है.

ये तो जैसे शुरुआत है. भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान की तीन पीढियां एक साथ कार्यरत हैं. अपने अनवरत प्रयासों से असीमित अंतरिक्ष को भेदने के लिए आतुर चंद्रयान प्रथम, मंगलयान ,चंद्रयान द्वितीय, सूर्य का सर्वेक्षण करनेवाला आदित्य प्रकल्प हो या पृथ्वी में मानव को अनुसंधनात्मक सैर पर ले जानेवाला मानव अंतरिक्ष मिशन हो - भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान संपूर्ण देश में स्थित विभिन्न इकाईयों द्वारा राष्ट्र की अनवरत सेवा में लीन होकर अपने पथ प्रदर्शक डॉ.विक्रम साराभाई के शब्दों को सार्थक करने में जुटा हुआ है.

परमाणु रचना के प्रति चिंतन

डॉ.विजय कुमार भार्गव,
नवी मुंबई

अनादिकाल से प्रकृति में उपलब्ध पदार्थों की रचना और ऊर्जा के स्रोतों पर शोध चलता आ रहा है. मानव की सदा जिज्ञासा रही है कि प्रकृति में उपलब्ध पदार्थ किन-किन तत्वों से मिलकर बने हैं. इस प्रक्रिया में सबसे पहले समझा गया कि प्रकृति पाँच तत्वों यथा जल, वायु, आकाश, थल और अग्नि से बनी है. जैसे-जैसे शोध आगे बढ़ा तो ज्ञात हुआ कि जल, वायु इत्यादि तत्व नहीं हैं. उदाहरण के लिए जल हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन तत्वों से मिल कर बना है और वायु में कई गैसें समाहित हैं, जिनमें नाइट्रोजन और ऑक्सीजन प्रमुख हैं. जब चिन्तन और आगे बढ़ा तो जिज्ञासा बढ़ी कि तत्व का सबसे छोटा भाग जिसके और टुकड़े नहीं किए जा सकते क्या होगा? इस शोध के आधार पर तत्व के उस सबसे छोटे भाग को जो भौतिक रूप से तोड़ कर प्राप्त किया जा सकता है अणु (मोलीक्यूल) कहा गया. फिर देखा गया कि रासायनिक क्रिया द्वारा अणु को और छोटे भाग में तोड़ा जा सकता है. इस छोटे भाग को एटम कहा गया. एटम ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ है अटूट. संस्कृत में इसे परमाणु कहते हैं.

चिन्तन कभी समाप्त नहीं होता. वैज्ञानिकों ने सोचा कि एटम मूल कण है क्या? या यह भी किन्हीं अन्य मूल कणों से मिल कर बना है. इन्हीं शोधों के आधार पर पता चला कि एटम धनात्मक एवं ऋणात्मक कणों से मिल कर बना है. धनात्मक कणों को प्रोटॉन और ऋणात्मक को इलेक्ट्रॉन कहा गया. शोध से यह भी पता चला कि इलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन के चारों ओर ठीक उसी प्रकार घूमता है जैसे सूर्य के चारों ओर ग्रह. प्रश्न उठा कि क्या इन ग्रहों की तरह इलेक्ट्रॉनों की कक्षाएं अलग-अलग होंगी या एक कक्षा में एक से अधिक इलेक्ट्रॉन होंगे और सूर्य के ग्रहों की तरह कई कक्षाएं होंगी. क्या सूर्य के ग्रहों की तरह सूर्य से किसी एक दूरी पर एक ही कक्षा होगी या एक से अधिक होंगी? साथ में यह भी प्रश्न उठा कि ग्रह तो सूर्य के चारों ओर घूमने पर कोई ऊर्जा उत्सर्जित नहीं करते हैं पर इलेक्ट्रॉन चारों ओर घूमने पर विद्युतचुम्बकीय तरंगे उत्सर्जित करता है, तो इलेक्ट्रॉन कैसे उसी कक्षा में बना रहता है? इस प्रश्न का समाधान किया गया और पता चला कि एक कक्षा में दो इलेक्ट्रॉनों से अधिक इलेक्ट्रॉन नहीं होते हैं और वे अपनी ऊर्जा के अनुसार ऐसी कक्षा चुनते हैं जिसमें भ्रमण करने पर उत्पन्न ऊर्जा की तरंगें उसी कक्षा में समाई रहती हैं.

आगे शोधों में देखा गया कि एटम का भार उसी अनुपात में नहीं बढ़ता जिस अनुपात में प्रोटॉनों की संख्या बढ़ती है. एटम के भार से संबंधित शोध से पता चला कि प्रोट्रॉनों के साथ लगभग उन्हीं के भार के आवेश रहित कण भी होते हैं जिन्हें न्यूट्रॉन कहा गया. इलेक्ट्रॉनों का भार प्रोट्रॉनों के भार से नगण्य पाया गया. एटम के केन्द्र पर न्यूट्रॉन व प्रोट्रॉन के सह निवास को एटम का नाभिक कहा गया जिसके चारों ओर इलेक्ट्रॉनों की कक्षाएं होती हैं. शोध थमता नहीं है. जिज्ञासा बढ़ती है. इस जिज्ञासा से परमाणु के नाभिक की शक्ति और नाभिक के कणों के आपसी बलों पर आगे शोध हुआ. एटम की आंतरिक शक्ति से हिरोशिमा नागासाकी, में एटम बम विस्फोट किया गया. यह उस शक्ति का विनाशकारी उपयोग था. प्रकृति में कोई भी ऊर्जा विनाशकारी भी हो सकती है और लाभकारी भी. यह इस पर निर्भर करता है कि उसका उपयोग किस प्रकार किया जाए. वैज्ञानिकों ने इस पर विचार किया और इस विस्फोट से उत्पन्न ऊष्मा ऊर्जा को नियंत्रित करके विद्युत उत्पादन किया. एटम के ऊर्जा प्रदान करने के इस गुण के अलावा उनसे एक्स-किरणों जैसी अन्य शक्तिशाली किरणों के उत्पादन क्षमता की जानकारी प्राप्त हुई. इन्हें नाभिकीय विकिरण अल्फा, बीटा व गामा कहा गया. आज इन्हीं विकिरणों के कारण कैंसर जैसे रोग का उपचार किया जाता है. जिस

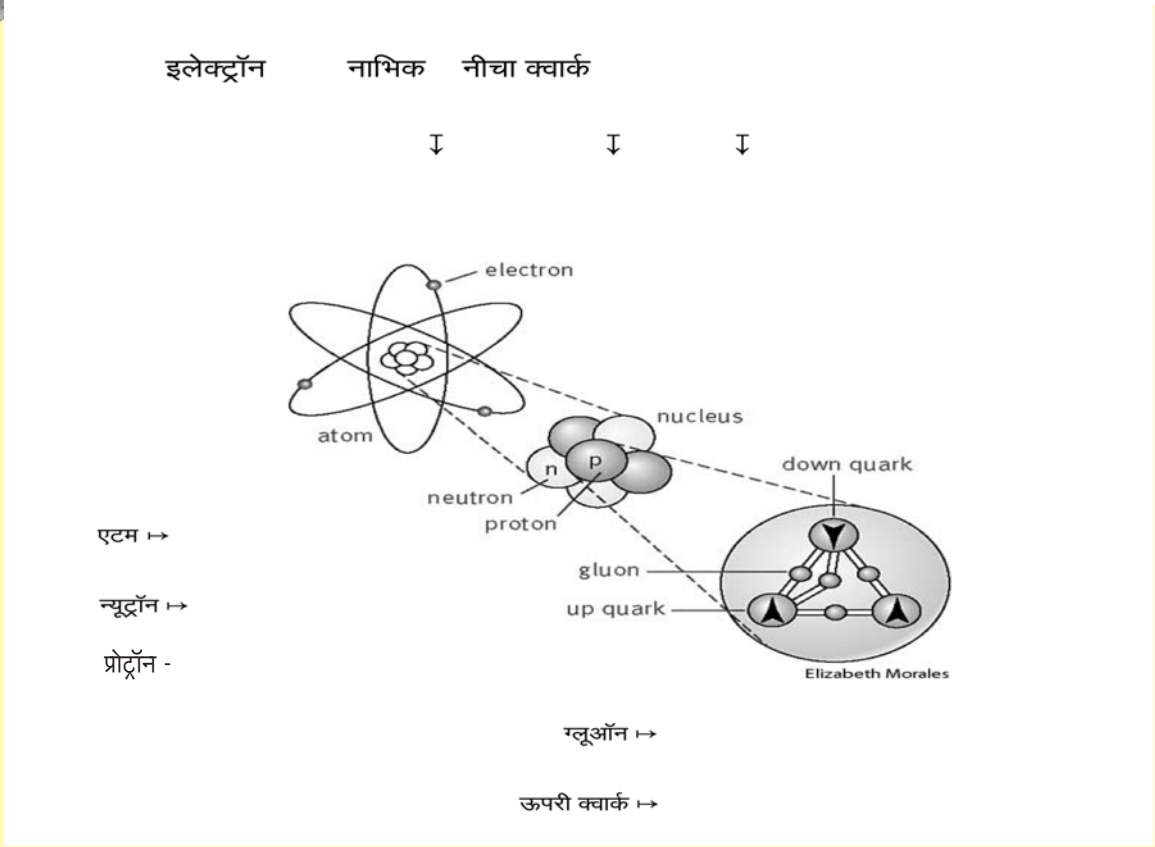

प्रकार विद्युत उत्पादन के लिए परमाणु विस्फोट को नियंत्रित किया जाता है उसी प्रकार एटम से उत्सर्जित विकिरण का उपयोग भी सावधानी से और सुरक्षा पूर्वक किया जाता है अन्यथा यही विकिरण कैंसर ही नहीं अन्य रोग भी उत्पन्न कर सकते हैं यहां तक कि मृत्यु भी हो सकती है. इसी अज्ञानता के कारण दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा बिना सुरक्षा बरते कोबाल्ट-60 विकिरण स्रोत कबाड़ी को बेचने से एक-दो की मौत हुई और कुछ रोगी हुए. इसीलिए परमाणु विस्फोट से उत्पन्न ऊर्जा एवं उत्तेजित एटम से उत्सर्जित विकिरण के सुरक्षित उपयोग के लिए भारत की परमाणु ऊर्जा नियामक परिषद मुंबई जैसे संस्थाओं द्वारा भारत में परमाणु विद्युत घरों एवं विकिरण स्रोतों के उपयोग में सुरक्षा सुनिश्चित की जाती है.

एटम के अंदर झांकने की जिज्ञासा के कारण शोध यहीं नहीं थमा. इसी क्रम में प्रश्न उठा कि समान विद्युत आवेश के कण एक दूसरे को विकर्षित करते हैं, तो धनात्मक प्रोट्रॉन कैसे एक दूसरे से सटे हुए हैं. उस समय दो वस्तुओं के बीच गुरुत्वाकर्षण बल की जानकारी थी पर गणना से पता चला कि गुरुत्वाकर्षण बल धनात्मक आवेशों के बीच विद्युतचुंबकीय विकर्षण बल से बहुत कम है. शोध से ज्ञात हुआ कि नाभिक के आकार के बराबर की दूरियों पर जो बल लगता है वह विकर्षण बल से कहीं अधिक होता है. इस बल को दृढ़ बल कहा गया. आगे शोध से दूसरे अन्य मौलिक कणों के बीच के बल का भी ज्ञान हुआ. यह गुरुत्वाकर्षण बल से कहीं अधिक पर दृढ़ बल से कम मान का पाया गया. इसे क्षीण बल कहा गया. इसके बाद इन बलों के वाहक कणों पर शोध से पता चला कि दृढ़ बल का वाहक कण मेसॉन, विद्युतचुम्बकीय बल का फोटॉन और क्षीण बल का बोसॉन होता है. गुरुत्वाकर्षण बल के वाहक की जानकारी अभी तक नहीं है, पर इसका नाम ग्रेवीटॉन रख दिया गया है. इन बलों के मौलिक कणों पर भी अध्ययन हुआ है. इस अध्ययन से पता चला कि प्रोट्रॉन एवं न्यूट्रॉन क्वार्क नामक मौलिक कणों से मिल कर बना है. मौलिक कणों को दो श्रेणियों यथा फेरमिऑन और बोसॉन में रखा गया. फेरमिऑन कणों को लेप्टॉन और क्वार्क कणों में विभाजित किया गया. लेप्टॉन संयोजित कणों के विघटन में भाग लेते हैं और क्वार्क संयोजित कण बनाते हैं. हेड्रॉन, परमाणु नाभिक, परमाणु व अणु संयोजित कण होते हैं.

मैगलेव ट्रेन - चले पवन की चाल

विनीता सिंघल,
पूर्व संपादिका, साइंस रिपोर्टर, सीएसआईआर, नयी दिल्ली

आज की तेज रफ्तार जिंदगी में यात्रा के लिए कार, बस, जहाज और पारंपरिक ट्रेनें कहीं बहुत पीछे छूट गई हैं. आज हवाई यात्रा ने परिवहन के क्षेत्र में क्रांति ला दी है क्योंकि इसके जरिए हफ्तों के सफर को दिनों में और दिनों के सफर को घंटों में पूरा किया जा सकता है. आए दिन किसी न किसी कारण से उड़ानों में होने वाली देरी या अन्य असुविधाओं के बावजूद भी आज यह यात्रा का सबसे सुगम साधन है. हालांकि जल्दी ही परिवहन का एक नया प्रारूप इक्कीसवीं सदी में वैसी ही क्रांति ला सकता है जैसी कि बीसवीं सदी में हवाई यात्रा से आई थी. कुछ देश आज भी इसका इस्तेमाल कर रहे हैं. कुछ दशों में शक्तिशाली विद्युतचुंबकों द्वारा विकसित तीव्र-गति की ट्रेनें अब भी चल रही है जिन्हें मैगलेव ट्रेन कहते हैं. पिछले दिनों जापानी रेल नेटवर्क ने गति (स्पीड) का एक नया करिश्मा कर दिखाया. जापान की एक मैग्नेटिक लेवीटेशन ट्रेन ने अपनी ही स्पीड का वर्ल्ड रिकॉर्ड तोड़कर 603 किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार का नया रिकॉर्ड बनाया. जापान को बुलेट ट्रेन नेटवर्क का जनक माना जाता है. 1964 में यहीं बुलेट ट्रेन की शुरूआत हुई थी. लेकिन अब जापान मैगलेव ट्रेन पर काम कर रहा है. मैगलेव का अर्थ है मैग्नेटिक लेविटेशन जिसमें ट्रेन पारंपरिक लोहे के पहियों और ट्रैकों की जगह चुंबक के मूल सिद्धांतों के अनुसार एक गाइडवे के ऊपर चलती हैं.

वैसे तो मैगलेव ट्रेन विद्युत चुम्बकीय निलंबन (इलेक्ट्रोमेग्नेटिक सस्पेंशन) तथा विद्युत गतिकीय निलंबन (इलैक्ट्रोडायनामिक सस्पेंशन) सिद्धांत दोनों पर चलती हैं, लेकिन जापान में ये ट्रेन इलैक्ट्रोडायनामिक सस्पेंशन सिद्धांत पर काम करती है. इस तकनीक में वाहन को हवा में उठाने के लिए चुंबक के प्रतिकर्षण बल का प्रयोग किया जाता है. जर्मनी में बनने वाली मैगलेव ट्रेन में इलैक्ट्रोमैग्नेटिक सस्पेंशन तकनीक का इस्तेमाल किया जाता है. इस तकनीक में विद्युत आवेशित चुंबक (मैग्नेट) कोच को रेल ट्रैक से ऊपर उठा कर आगे धकेलते हैं. इसमें ट्रेन को आगे बढ़ाने के लिए रैखिक (लिनीयर) मोटर्स का इस्तेमाल होता है. इससे घर्षण या कंपन खत्म हो जाता है और ट्रेन तेज स्पीड में दौड़ पाती है. इस ट्रेन में न तो पहिये होते हैं, न पारंपरिक इंजन. मैगलेव ट्रेनें सेंट्रल जापान रेलवे की हैं. रेलवे चाहता है कि 2027 तक वह इसे टोकियो और नागोया के बीच चलाना शुरू कर दे. लेकिन कंपनी ने साफ कहा है कि ट्रेनें 505

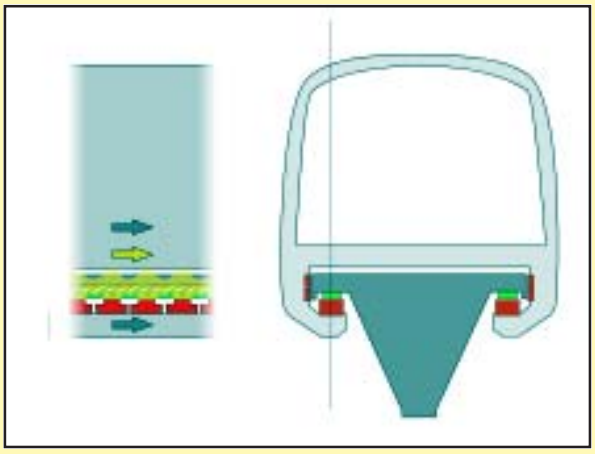

किलोमीटर प्रति घंटे की अधिकतम स्पीड पर ही दौड़ेगीं. हालांकि इस ट्रेन की संकल्पना तो एक शताब्दी पहले बनी थी, लेकिन सबसे पहली जर्मनी निर्मित मैगलेव ट्रेन का परीक्षण 2002 में शंघाई चीन में किया गया था और आज बहुत से देश इस तकनीक में रुचि ले रहे हैं.

मैगलेव ट्रेन रेल सिस्टम के तीन प्रमुख घटक होते हैं : एक विशाल विद्युत शक्ति स्रोत, गाइडवे या ट्रैक पर चढ़ी धात्विक कुंडलियां और ट्रेन के नीचे लगे बड़े पथ प्रदर्शक चुंबक. मैगलेव ट्रेन और पारंपरिक ट्रेन में सबसे बड़ा अंतर यही होता है कि मैगलेव ट्रेन में उस तरह के इंजन की

जरूरत नहीं होती जैसी कि लोहे के ट्रैक पर चलने वाली ट्रेनों को खींचने के लिए होती है. मैगलेव ट्रेनों में इंजन की कोई भूमिका नहीं होती. किसी भी प्रकार के ईंधन के बजाय ये ट्रेनें गाइडवे की दीवारों में लगी वैद्युत कुंडलियों द्वारा उत्पन्न चुंबकीय क्षेत्र द्वारा चलती हैं. मूलतः मैगलेव ट्रेनें तीन निम्न प्रकार के सस्पेंशन पर काम करती हैं.

इलैक्ट्रोमैग्नेटिक सस्पेंशन (ईएमएस) : चुंबक के बारे में हम सब जानते हैं कि चुंबक के समान ध्रुव एक दूसरे को प्रतिकर्षित करते हैं जबकि विपरीत ध्रुव एक दूसरे को आकर्षित करते हैं. इलैक्ट्रोमैग्नेटिक सस्पेंशन अर्थात विद्युतचुंबकीय नोदन (प्रोपल्सन) के मूल में यही सिद्धांत है. विद्युतचुंबक अन्य चुंबकों की भांति धातु की बनी वस्तुओं को आकर्षित करते हैं लेकिन यह चुंबकत्व प्रभाव अस्थायी होता है.

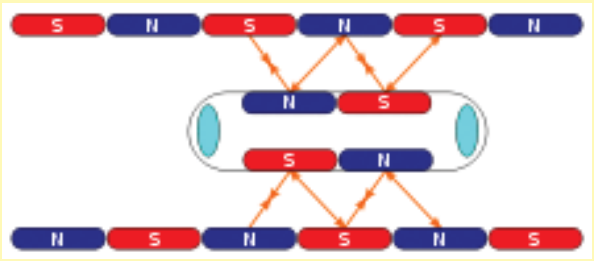

इलैक्ट्रोमैग्नेटिक सस्पेंशन का उपयोग ट्रांसरैपिड को ट्रैक पर उठाने के लिए किया जाता है जिससे कि ट्रेन, पहियों वाली ट्रेन से तेज गति से चल सके.

इलैक्ट्रोमैग्नेटिक सस्पेंशन प्रणाली (सिस्टम) में ट्रेन स्टील रेल पर लेवीटेट करती है जबकि ट्रेन से जुड़े इलैक्ट्रोमैग्नेट नीचे से रेल की ओर अभिमुख होते हैं. पूरा तंत्र सामान्यतया बी आकार के आर्म्स की एक श्रृंखला पर व्यवस्थित होता है जबकि आर्म का ऊपरी भाग गाड़ी से जुड़ा होता है और निचले भीतरी किनारे में चुंबक लगे होते हैं. चुंबकों और रेल के बीच की दूरी में मामूली सा भी परिवर्तन, बहुत से बल उत्पन्न करता है. हालांकि बलों में ये परिवर्तन अस्थायी होते हैं. सस्पेंडेड मैगलेव सिस्टम का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह किसी भी गति पर काम करता है जबकि इलैक्ट्रोडायनेमिक सस्पेंशन 30 किमी प्रति घंटे से कम गति पर काम नहीं करता है. इसलिए इसमें अलग से एक निम्न गति के सस्पेंशन सिस्टम की आवश्यकता नहीं होती.

इलैक्ट्रोडायनेमिक सस्पेंशन (ईडीएस) : जापान के इंजीनियर मैगलेव ट्रेन के जिस प्रारूप को विकसित कर रहे हैं, उसमें इलैक्ट्रोडायनेमिक सस्पेंशन (ईडीएस) सिस्टम का प्रयोग होता है, जो चुंबकों के प्रतिकर्षण बल पर आधारित है. जापान और जर्मनी की मैगलेव ट्रेनों में सबसे बड़ा अंतर यही है कि जापानी ट्रेनों में अति शीतित (सुपरकंडक्टिंग) विद्युतचुंबकों का प्रयोग होता है. इस प्रकार के चुबंक तब भी विद्युत संवहन करते रहते हैं जबकि विद्युत आपूर्ति बंद कर दी गई हो. ईएमएस सिस्टम में, जिसमें मानक चुंबकों का प्रयोग होता है, कुंडलियां केवल तब ही विद्युत संवहन करती हैं जब विद्युत आपूर्ति हो रही हो. जापान द्वारा विकसित इस पद्धति में कुंडलियों को अत्यंत निम्न तापक्रम तक ठंडा किया जाता है, जिसके कारण ऊर्जा की भी बचत होती है. हालांकि कुंडलियों को ठंडा करने के लिए क्रायोजेनिक तकनीक का प्रयोग महंगा पड़ता है.

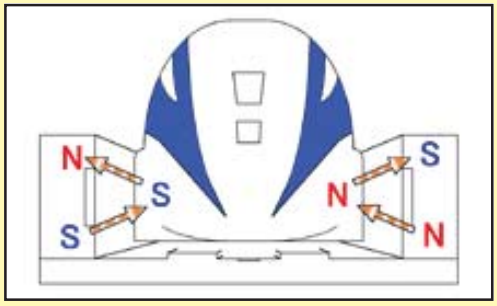

संस्पेंशन कुंडलियों के जरिए प्रेरित ईडीएस मैगलेव सस्पेंशन

जापान में मैगलेव ईडीएस सस्पेंशन को गाड़ी के सुपरकंडक्टिंग चुंबकों के जरिए गाड़ी के दोनों ओर प्रेरित चुंबकीय क्षेत्रों द्वारा ऊर्जा मिलती है. ईडीएस पद्धति पर आधारित मैगलेव ट्रेन में सबसे बड़ी कमी यह है कि लगभग 100 किमी प्रतिघंटे की रफ्तार पहुंचने तक इसे रबड़ के टायरों पर चलना पड़ता है. वहीं इसका एक लाभ यह भी है कि अगर कभी बिजली आपूर्ति बंद हो जाए तो पहिए काम आते हैं. जर्मनी की ट्रांसरैपिड ट्रेन में एक आपातकालीन बैटरी पावर सप्लाई भी लगी होती है. इसके अतिरिक्त, इसमें पेसमेकर लगे यात्रियों को सुपरकंडक्टिंग विद्युत चुंबकों द्वारा उत्पन्न चुंबकीय क्षेत्र से बचाने की भी व्यवस्था होती है.

इलैक्ट्रोडायनेमिक सस्पेंशन में, गाइडवे और ट्रेन दोनों ही चुंबकीय क्षेत्र उत्पन्न करते हैं और ट्रेन इन चुंबकीय क्षेत्रों के बीच लगने वाले विकर्षण/प्रतिकर्षण और आकर्षण बल द्वारा लेवीटेट करती है. यद्यपि मैगलेव विकास के आरंभ में ट्रेन को केवल प्रतिकर्षण बल द्वारा ही लेवीटेट किया जाता था, बाद में प्रतिकर्षण और आकर्षण ईडीएस सिस्टम का प्रयोग किया गया. चुंबकीय क्षेत्र या तो सुपरकंडक्टिव चुंबकों द्वारा उत्पन्न किया जाता है या फिर इंडक-ट्रैक की तरह स्थायी चुंबकों की एक व्यूह रचना द्वारा. ट्रैक में प्रतिकर्षण और आकर्षण बल, तारों में प्रेरित चुंबकीय क्षेत्र द्वारा उत्पन्न होता है. ईडीएस मैगलेव सिस्टम का सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह गतिक रूप से स्थायी होता है, ट्रैक और चुंबकों के बीच

की दूरी में होने वाले परिवर्तन, सिस्टम को वास्तविक स्थिति में लाने के लिए प्रबल बल उत्पन्न करते हैं. इसके अतिरिक्त, आकर्षण बल, समान प्रभाव उत्पन्न करने के लिए इसके विपरीत बदलते हैं. इस प्रकार, किसी भी तरह के फीडबैक नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होती. धीमी गति पर, जब तक इन कुंडलियों में प्रेरित विद्युत धारा (करंट) और परिणामी चुंबकीय फ्लक्स इतनी अधिक नहीं होती कि ट्रेन लेवीटेट कर टेक-ऑफ गति प्राप्त कर ले तब तक ट्रेन को चलाने के लिए इसमें पहिए होते हैं. चूंकि ट्रेन कभी भी, कहीं भी किसी तकनीकी खराबी या किसी अन्य कारण से रुक सकती है, इसलिए पूरा ट्रैक धीमी और तेज गति, दोनों ही स्थितियों में, सिस्टम को संभालने में सक्षम होता है.

ईडीएस का एक नया प्रकार है इन्डक-ट्रैक, जिसमें बिजली द्वारा चालित विद्युतचुंबकों या शीतित सुपरकंडक्टिंग चुंबकों के स्थान पर स्थायी सामान्य तापक्रम वाले चुंबकों का प्रयोग होता है. इन्डक-ट्रैक में केवल ट्रेन को लेवीटेट करने के समय ही विद्युत स्रोत की जरूरत होती है. अगर विद्युत आपूर्ति फेल हो जाए तो ट्रेन की गति धीमी हो जाती है और वह अपने पहियों पर रुक जाती है. इन्डक-ट्रैक दो प्रकार के होते है - इन्डक-ट्रैक -I और इन्डक-ट्रैक -II. इन्डक-ट्रैक I को तेज गति के लिए बनाया गया है जबकि इन्डक-ट्रैक II धीमी गति के लिए उपयुक्त होता है. इन्डक-ट्रैक अधिक सक्षमता से अधिक ऊंचाई तक लेवीटेट कर सकती हैं. जैसे जैसे यह प्रति घंटे की दर से कुछ किलोमीटर चलती है, इन्डक-ट्रैक ट्रेन ट्रैक से लगभग एक इंच लेवीटेट हो जाती है. ट्रैक के ऊपर बड़े गैप का अर्थ है कि ट्रेन को स्थायित्व बनाए रखने के लिए किसी जटिल सेंसिंग सिस्टम की जरूरत नहीं होती. पहले स्थायी चुंबकों का प्रयोग नहीं किया जाता था क्योंकि वैज्ञानिकों को लगता था कि वे आवश्यक लेवीटेटिंग बल उत्पन्न नहीं कर सकते. लेकिन इन्डक-ट्रैक डिजाइन में चुबंकों को हैलबैक सरणी (ऐरे) में व्यवस्थित करने से इस समस्या का समाधान हो गया. चुबंकों को इस प्रकार लगाया गया कि चुंबकीय क्षेत्र की तीव्रता नीचे की ओर नहीं बल्कि ऊपर की ओर केंद्रित होती है. इन्डक-ट्रैक II में धीमी गति पर प्रबल चुंबकीय क्षेत्र उत्पन्न करने के लिए दो हैलबैक ऐरे लगे होते हैं.

एक अन्य तकनीक जिसे न केवल अभिकल्पित और सिद्ध किया बल्कि जिसका एकस्व (पेटेंट) भी किया गया, लेकिन मई 2015 तक जिस पर काम नहीं हो सका, वह है मैग्नेटोडायनेमिक सस्पेंशन. इसमें ट्रेन को उठाने और सही स्थिति में रखने के लिए स्टील ट्रैक के निकट लगी स्थायी चुंबक की व्यूह रचना का प्रयोग किया जाता है. कुछ अन्य तकनीक जैसे कि प्रतिकर्षक स्थायी चुंबक और सुपरकंडक्टिंग चुबंकों पर भी अनुसंधान कार्य जारी है.

मैगलेव ट्रैक : ट्रैक के साथ साथ चलने वाली चुंबकीय कुंडली, जिन्हें गाइडवे कहते हैं, ट्रेन के नीचे लगे विशाल चुंबकों को प्रतिकर्षित करती है और ट्रेन इससे 0.39 और 3.93 इंच के बीच ऊपर उठ जाती है. ट्रेन के एक बार ऊपर उठ जाने के बाद, ऊर्जा, गाइडवे के दीवारों की कुंडलियों में भेजी जाती है इससे एक विलक्षण चुंबकीय क्षेत्र उत्पन्न होती है जो गाइडवे के सापेक्ष ट्रेन को पुल और पुश करता है. मैगलेव ट्रेन हवा के कुशन पर बिना किसी घर्षण के चलती है. घर्षण के न होने और अपने वायुगतिक (एयरोडायनेमिक) डिजाइन के कारण ही मैगलेव ट्रेनें 500 किमी प्रति घंटे की रफ्तार से चल पाती हैं. लंबी दूरी की उड़ानों में प्रयोग किया जाने वाला बोइंग 777 विमान अधिकतम 905 किमी प्रति घंटे की रफ्तार से चलता है. निर्माताओं का कहना है कि मैगलेव ट्रेन 1500 किलोमीटर तक की दूरी बड़ी आसानी से तय कर सकती है. उदाहरण के लिए पेरिस से रोम तक की दूरी को केवल 310 किमी प्रतिघंटे की रफ्तार से ही मात्र दो घंटों में तय किया जा सकेगा.

लेवीटेशन और मार्गदर्शक (गाइडवे) कुंडली

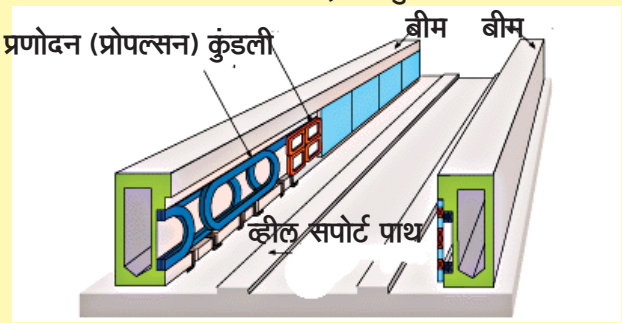

मैगलेव ट्रैक

मैगलेव परिवहन की कल्पना हालांकि एक शताब्दी पूर्व की गई थी, लेकिन पहली व्यापारिक मैगलेव ट्रेन का परीक्षण 2002 में शंघाई, चीन में किया गया. लगभग एक वर्ष बाद दिसम्बर 2003 में इसे आम लोगों के लिए चालू किया गया. 430 किलोमीटर प्रतिघंटे की चाल से चलनेवाली शंघाई की मैगलेव ट्रेन, जिसे ट्रान्सरेपिड भी कहते हैं, इस समय की सबसे तेज गति की ट्रेन है. यह रेलवे लाइन शंघाई प्युडॉन्ग इंटरनेशनल एयरपोर्ट को मध्य प्युडॉन्ग शंघाई के बाहरी भाग से जोड़ती है. इस 30.5 किलोमीटर की दूरी को यह आठ मिनट में पूरा करती है. इसके अलावा अनेक देशों की अपनी मैगलेव ट्रेन बनाने की योजना है लेकिन शंघाई हवाईअड्डे से चलने वाली मेगलेव लाइन एकमात्र व्यापारिक मैगलेव

बेजिंग, चीन की मैगलेव ट्रेन

लाइन है. अमेरिका में लॉस एंजेल्स से पीटसबर्ग तक मैगलेव लाइन बनाने पर काम चल रहा है. वास्तव में मैगलेव लाइन बनाने में सबसे बड़ी बाधा इस पर आने वाला खर्च है.

दशकों तक अनुसंधान और विकास के बावजूद अभी तक केवल दो मैगलेव परिवहन तंत्रों को चालू किया जा सका है और दो निर्माणाधीन हैं. अप्रैल 2004 में, शंघाई में ट्रांसरैपिड सिस्टम को आम लोगों के लिए शुरू किया गया

जापान की नई सुपर हाई स्पीड ट्रेन

और मार्च 2005 में जापान ने अपेक्षाकृत कम गति की एचएसएसटी लिनिमो लाइन को 2005 वर्ल्ड एक्स्पो के लिए शुरू किया. अपने आरंभिक तीन महीनों में लिनिमो से 10 मिलियन लोगों ने यात्रा की. दक्षिणी कोरिया और चीन दानों ही अपने अपने ढंग की कम गति वाली मैगलेव ट्रेन

मेगा मैगलेव ट्रेन 7

रूटों का निर्माण कर रहे हैं, एक बेजिंग में और दूसरा सीओल के इनचिऑन हवाईअड्डे पर. हालांकि अनेक मैगलेव परियोजनाएं तकनीकी क्षमता और आर्थिक दृष्टि से विवादित हैं.

मैगलेव ट्रेन, पारंपरिक पहियों पर चलने वाली ट्रेनों की अपेक्षा अधिक अबाध गति से और बिना शोर के चलती है. इन पर मौसम का प्रभाव भी अपेक्षाकृत कम होता है. उछाल के लिए आवश्यक ऊर्जा भी कुल ऊर्जा खपत से अधिक नहीं होती है. निर्वात नली ट्रेन प्रणाली (वैक्युम ट्यूब ट्रेन सिस्टम) मैगलेव ट्रेनों की उच्च गति को बनाए रखने में सहायक हो सकता है. हालांकि अभी तक व्यापारिक स्तर पर ऐसे सिस्टम बने नहीं हैं. पारंपरिक सामान्य ट्रेनों की तुलना में इनको बनाने पर खर्च तो अधिक आता है, लेकिन वह इनको अधिक सक्षम बनाता है. पहियों वाली उच्च गति की ट्रेनों में, पहियों के कारण पटरियों पर होने वाले 'हैमर प्रभाव' के साथ साथ घर्षण के कारण होने वाली टूट-फूट से न केवल ट्रेन को क्षति पहुंचती है बल्कि तेज गति में भी बाधा आती

मेगा मैगलेव ट्रेन 8

है. इसके विपरीत, मैगलेव ट्रेन का निर्माण तो महंगा है किंतु रखरखाव पर खर्च कम हो जाता है.

मैगलेव तो नहीं लेकिन भारत में भी बुलेट ट्रेन आने की बात कई दशकों से कही जा रही है. हालांकि अभी तक भारत में उच्च गति वाली रेल लाइन नहीं है. इसका यह नाम अर्थात बुलेट ट्रेन इसलिए पड़ा क्योंकि तेज गति की ट्रेन के इंजन को असेम्बल करने के लिए बुलेट का उपयोग किया गया था. 250 किमी/घंटा की रफ्तार वाली ट्रेन चलाने के लिए उच्च गति की रेलवे लाइन की आवश्यकता होती है. अभी तो भारत में चल रही तेज गति की रेलगाड़ियों की गति बढ़ा कर 160 से 200 किमी/घंटा करनी है. इसके लिए रेलवे लाइनों को नवीन तकनीक से सुधार कर इस गति पर चलने योग्य बनाया जाएगा. हाल ही में देश की पहली सेमी हाई स्पीड ट्रेन, जिसकी गति 160 किमी प्रति घंटा है और जिसे धीरे-धीरे बढ़ा कर 200 किमी प्रति घंटा किया जाएगा, को नई दिल्ली और आगरा के बीच चलाया गया. इस रेलगाड़ी की शुरूआत यह आशा अवश्य जगाती है कि एक दिन हमारे देश में भी बुलेट ट्रेन अवश्य चलेगी.

स्वास्थ्य को प्रभावित करती मधुमेह

डॉ. दया शंकर त्रिपाठी
(बीरबल साहनी पुरस्कार से सम्मानित)
बी 2/63 सी-1के, भदैनी
वाराणसी - 221001

मधुमेह एक गम्भीर बीमारी है जो मनुष्य के स्वास्थ्य को एकाएक प्रभावित करती है. किसी भी स्वस्थ व्यक्ति के इस रोग से प्रभावित होते ही उसके स्वास्थ्य में गिरावट आने लगती है और शारीरिक क्षय दिखने लगता है. यह रोग उन व्यक्तियों को होता है जो शारीरिक श्रम से दूर रहते हैं. अधिकाशतः कुर्सी पर बैठकर कार्य करने वाले लोगों को यह रोग होने की सम्भावना अधिक रहती है. ये लोग एक स्थान पर बैठे विभागीय कार्यों को तो बड़ी ही कुशलता के साथ पूरा करते हैं, परन्तु कार्य पूरा करने के चक्कर में अपने स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं देते. धनी लोग, जो दिमागी काम करते हैं, बहुत अच्छा खाते हैं, सोच-फिक्र, चिन्तन-मनन खूब करते हैं, परन्तु शारीरिक श्रम बिल्कुल नहीं करते, उन्हीं को मधुमेह अथवा प्रमेह रोग होता है. डॉक्टर, वैद्य, हकीम, वकील, बैरिस्टर, प्रोफेसर, पण्डित, विद्वान, सेठ-साहूकार आदि जिनको शारीरिक परिश्रम नहीं करना पड़ता, परन्तु भोजन खूब अच्छा मिलता है, प्रायः इस रोग के शिकार होते हैं. ऐसा कहा जाय कि जो लोग आलसी प्रवृत्ति के हैं, हिलना-डुलना नहीं चाहते, अपने शारीरिक कार्यों को अधीनस्थों और नौकरों के भरोसे पूरा करते हैं, उन्हें ही यह रोग ज्यादा होता है. आज भारत में लगभग 6.5 करोड़ व्यक्ति (2013 के ऑकड़ों के अनुसार) प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मधुमेह ग्रसित हैं.

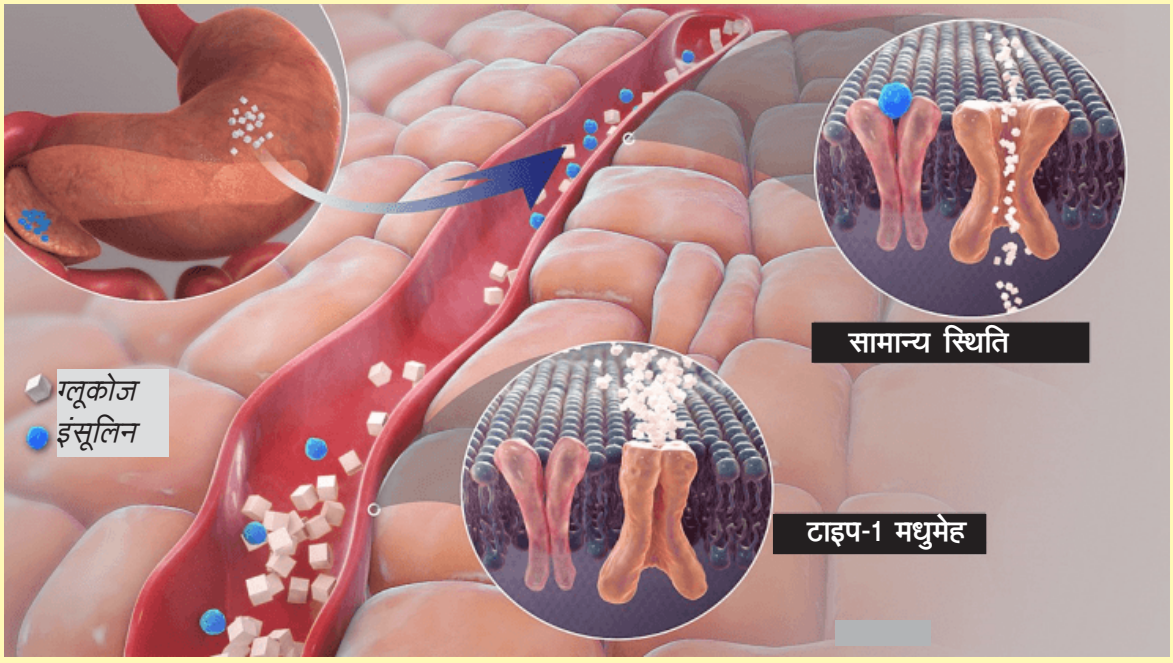

अभी तक अनेक दावों के बावजूद मधुमेह का कोई स्थायी उपचार नहीं खोजा जा सका है. परन्तु नियमित दिनचर्या, संयमित आहार और उपयुक्त चिकित्सा से रोग को नियंत्रित किया जा सकता है. ऐसा करना न सिर्फ आवश्यक है, बल्कि अनिवार्य भी है, अन्यथा यह रोग शरीर को भीतर ही भीतर खोखला बना देता है. इससे हृदय और रक्त संचार प्रणाली, आँखें, गुर्दे, स्नायुतंत्र और त्वचा के रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिससे आदमी का जीवन कठिन हो जाता है और उम्र भी घट जाती है.

बड़े एवं छोटे पदों पर बैठे अधिकारीगण, शिक्षकों, वैज्ञानिकों, बैककर्मियों, वकीलों, चिकित्सकों के साथ-साथ बड़े-बड़े व्यापारियों, ट्रेन, बस और ट्रक के चालकों आदि में यह रोग बहुतायात में पाया जाता है. परन्तु इनमें से जो लोग शुरू से ही स्वास्थ्य के प्रति संवेदनशील रहते हैं और अपनी दैनिक गतिविधियों का प्रबन्धन अच्छी तरह से करते हैं वे इस रोग से बचे रहते हैं अथवा उन्हें यह रोग देर से होता है.

बार-बार प्यास लगना, बार-बार पेशाब जाना, मुँह सूखना, सुस्ती महसूस होना, जल्दी-जल्दी भूख लगना, पेशाब करने के बाद उस स्थान पर चीटे-चीटियों का पाया जाना, कब्ज रहना, आँखों से देखने में परेशानी महसूस होना मधुमेह के प्राथमिक लक्षण हैं. घाव भरने में देरी होना, ऑपरेशन के बाद घाव का जल्दी ठीक न होना, शरीर पर कहीं भी खरोच लग जाने पर पक जाना और ठीक होने में काफी समय लगना मधुमेह होने के सम्भावित लक्षण हैं.

ज्यादा प्यास लगना और लघुशंका की बार-बार शिकायत मधुमेह के प्रमुख लक्षण हैं. टाइप-एक मधुमेह में अस्वाभाविक रूप से भूख बढ़ने के बावजूद वजन में गिरावट आती जाती है. परन्तु, टाइप-दो मधुमेह के रोगी प्रायः मोटे या स्थूलकाय होते हैं. रोगी के स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है. उसे कमजोरी और थकान बनी रहती है. टाइप-एक श्रेणी का मधुमेह बेकाबू हो जाए तो उल्टियाँ हो सकती हैं और रोगी सुस्त हो जाता है अथवा बेहोशी छा सकती है. दोनों ही श्रेणी के मधुमेह में समय से घाव न भरना, हाथ-पैरों में सूइयाँ चुभने जैसी संवेदना, हाथ पैरों का सुन्न हो जाना, बार-बार फोड़े-फुंसियाँ होते रहना, निद्रा की स्थिति बने रहना, त्वचा अथवा मूत्र-तंत्रिका प्रणाली में बार-बार संक्रमण होना और देखने की क्षमता में बदलाव होते रहना जैसे लक्षण भी प्रायः देखे जाते हैं. टाइप-दो श्रेणी के मधुमेह के अनेक रोगियों में ऐसे कोई लक्षण नहीं दिखते, जो रोग के प्रति सचेत कर सकें. उनमें रोग का निदान आकस्मिक तौर पर किसी डाक्टरी जाँच के दौरान किए गए मूत्र या रक्त परीक्षण से हो पाता है.

मधुमेह जानने का सबसे विश्वसनीय तरीका रक्त शर्करा की जाँच है. इसके लिए अनेक विधियाँ अपनाई जाती हैं. परन्तु यदि खाली पेट रक्त शर्करा की मात्रा 110 मिलीग्राम प्रति डेसी लीटर से ज्यादा और ग़लूकोज लेने के दो घंटे बाद 140 मिलीग्राम प्रति डेसी लीटर से ज्यादा मिलती है, तो यह रोग होने का पक्का प्रमाण है.

मूलरूप से उपचार के लिए मरीज के शरीर में ग्लूकोज की मात्रा और इंसुलिन की मात्रा के बीच संतुलन स्थापित करना जरूरी होता है. इसके लिए हर स्थिति की बारीकी से परीक्षण एवं जाँच करनी पड़ती है. इसके उपचार का मूल आधार नियमबद्ध एवं संयमित खानपान, नियमित व्यायाम और आवश्यक मामलों में इंसुलिन इंजेक्शन या मधुमेहरोधी दवाएँ हैं. मधुमेह से बचाव व स्वस्थ एवं दीर्घायु होने के लिए यह अनिवार्य है कि मरीज स्वयं इन उपायों की उपयोगिता समझे, उनका नियमित पालन करे और रोग पर बराबर नजर रखते हुए सही समय पर चिकित्सीय परामर्श और जाँच करवाता रहे. टाइप-दो श्रेणी के मधुमेह के कई मामलों में सिर्फ खान-पान में नियमबद्धता और नियमित व्यायाम से रोग को नियंत्रण में किया जा सकता है.

हालाँकि जिन्हें मधुमेह वंशागत क्रम में प्राप्त हुआ है उनके लिए खान-पान नियंत्रण, व्यायाम और औषधियों का उपयोग जरूरी है. ऐसे लोगों को तरह-तरह के मधुमेहरोधी चमत्कारी विज्ञापनों से बचकर कुशल चिकित्सक की देख-रेख में दवाओं का नियमित एवं निरन्तर सेवन करना चाहिए.

मधुमेह शरीर की रस-क्रिया प्रणाली कार्यिकी का विकार है. इसमें शरीर के भीतर 'शर्करा' (शुगर) की मात्रा जरूरत से ज्यादा हो जाती है जिसे शरीर अपने काम में नहीं ले पाता. हमारे भोजन में काफी मात्रा कार्बोहाइड्रेट की होती है. कार्बोहाइड्रेट के आंतों में पचने के परिणामस्वरूप शर्करा का निर्माण होता है. यह शर्करा ग्लूकोज होती है. ग्लूकोज आंतों से अवशोषित होकर रक्त में पहुँच जाती है और रक्त में मिलकर रक्त-धमनियों के रास्ते शरीर के प्रत्येक छोटे-बड़े हिस्से से होते हुए उत्तक और कोशिकाओं तक पहुँच जाती है.

प्रत्येक व्यक्ति के रक्त में ग्लूकोज का पहुँचना बराबर बना रहता है, जिसका शरीर की आन्तरिक प्रणाली यह ध्यान रखती है कि रक्त में ग्लूकोज का स्तर सदैव एक-सा बना रहे. यह काम इंसुलिन नामक हार्मोन करता है, जो पेट में पाई जाने वाली ग्रंथि अग्न्याशय (पैन्क्रियाज) के खास कोशिकीय समूहों (बीटा कोशिकाओं) में बनता है. जब-जब रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ती है, तब-तब इससे

इंसुलिन का रिसाव होता है. इसके प्रभाव से ग्लूकोज शरीर की कोशिकाओं के भीतर प्रवेश कर जाता है. यदि इसके बाद भी रक्त में अतिरिक्त ग्लूकोज बच जाता है तो, जिगर (लीवर) इंसुलिन के प्रभाव में उसे अपने अन्दर एकत्र कर लेता है. वह उसे (ग्लूकोज को) ग्लाइकोजन में बदल कर संरक्षित कर लेता है और भविष्य की आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसे संभाले रखता है. जब कभी हम इच्छा-अनिच्छा से उपवास करते हैं अथवा भूखे रह जाते हैं और रक्त में ग्लूकोज की मात्रा कम हो जाती है, तब 'ग्लूकागॉन' नामक हार्मोन 'ग्लाइकोजन' के रूप में सुरक्षित शर्करा को दुबारा ग्लूकोज में बदल कर रक्त में सम्मिलित कर देता है, जो हमारे काम आता है.

ग्लूकोज ही हमारे शरीर का वह ईंधन है जिससे जीवन-संचालन के लिए ऊर्जा प्राप्त होती रहती है. रक्त में मिल कर आए ग्लूकोज और ऑक्सीजन से ही शरीर की प्रत्येक कोशिका अपना जीवन संचालित करती है. मधुमेह होने पर यह व्यवस्था पूरी तरह से असंतुलित हो जाती है. शरीर में इंसुलिन की कमी या उसका निर्माण बिल्कुल न होना या किसी कारण से उसके अप्रभावी हो जाने से ऐसा होता है. तब, कोशिकाएँ रक्त से ग्लूकोज को उतनी आसानी से ग्रहण नहीं कर पातीं और रक्त में ग्लूकोज का स्तर अधिक होता जाता है. ऐसे में शरीर कोशिकाओं के लिए जरूरी ग्लूकोज की कमी को दूर करने के लिए संचित प्रोटीन और वसा से ग्लूकोज बनाना शुरू कर देता है. इससे रक्त शर्करा और ज्यादा बढ़ जाता है तथा शरीर के प्रोटीन एवं वसा से ग्लूकोज बनने के कारण शरीर दुर्बल होने लगता है.

इसके बाद जब यह खून साफ होने के लिए गुर्दो में पहुँचता है तब गुर्दे पर दबाव बढ़ जाता है. उनका काम ग्लूकोज को मूत्र में जाने से बचाना होता है. कभी-कभी रक्त में ग्लूकोज का स्तर इतना बढ़ जाता है कि गुर्दे भी उसे रोकने में अक्षम हो जाते हैं, जिससे ग्लूकोज मूत्र में घुल कर जाने लगता है. इससे मूत्र में जल की मात्रा बढ़ जाती है और जल के साथ-साथ शरीर के आवश्यक खनिज तत्व और इलेक्ट्रोलाइट भी बाहर चले जाते हैं, जो शरीर को कमजोर बना देते हैं और मनुष्य एकाएक दुबला और कमजोर दिखने लगता है.

शर्करा की कुल मात्रा बढ़ने से रोगी को बार-बार मूत्र त्याग करना पड़ता है. रात में भी उसे बार-बार लघुशंका होने लगती है जिससे रोगी रात भर ठीक से सो नहीं पाता. इससे शरीर में जल की मात्रा घटती है, मुँह सूखने लगता है और अनिद्रा की शिकायत हो जाती है. जल की कमी को पूरा करने के लिए उसे बार-बार जल ग्रहण करना पड़ता है. बार-बार लघुशंका की शिकायत और प्यास का बढ़ना मधुमेह के प्रमुख और प्राथमिक लक्षणों में से एक है. साथ ही ऐसे मूत्र पर चींटे और चीटियाँ भी दिखने लगती हैं.

यदि मधुमेह की उग्रावस्था में समुचित उपचार न किया गया तो मरीज के शरीर की मांसपेशियाँ गलने लगती है. प्रोटीन और वसा के जमा भंडार ग्लूकोज में बदल कर मूत्र के साथ बेकार चले जाते हैं. शरीर दुर्बल होता जाता है और मांस-पेशियाँ सूख कर कड़ी हो जाती हैं. शरीर से अधिक मात्रा में प्रोटीन और वसा के अस्वाभाविक विघटन से शरीर में अनेक प्रकार के नुकसानदेह रसायन पैदा होने लगते हैं और शरीर की अम्लीयता बढ़ जाती है. इस स्थिति को कीटो-एसिडोसिस कहते हैं. इसमें आपातकालीन उपचार जरूरी हो जाता है.

दमा, यक्ष्मा, गठिया, उकवत आदि रोग तो अमीर-गरीब, देहाती-शहरी सबको समान रूप से होते हैं, परन्तु मधुमेह प्रायः उन्हीं को होता है, जो अपने स्थान से हिलते नहीं, जो घर से दुकान या बँगले से दफ्तर तथा 'क्लब' तक भी मोटरगाड़ियों में जाया करते हैं और जो मिठाई, माँस-मछली, घी-चीनी, मिर्च-मसाले आदि के बिना भोजन नहीं करते.

इस रोग में तन्तुओं की जीवनी शक्ति (टिश्यू वाइटैलिटी) अत्यन्त कम हो जाती है, इसलिए देह-संचित शर्करा तन्तुओं में यथेष्ट मात्रा में दग्ध नहीं हो पाती. वस्तुतः इसी दहन-क्रिया (ऑक्सिडेशन) के अभाव का नाम ही मधुमेह है. जब शरीर में आमिष-जातीय (प्रोटीन) पदार्थों की उत्तम रूप से दहन-क्रिया नहीं होती, तब उसे वात-रोग, गठिया आदि (रियूमेटिज्म) कहा जाता है. जब चरबी-जातीय पदार्थो की अच्छी दहन-क्रिया नहीं होती, तब उसे ही स्थूलता, मोटापा आदि (ओबेसिटी) कहा जाता और जब देह में भली-भाँति शर्करा की दहन-क्रिया नहीं होती, तब हम उसे 'मधुमेह' कहते हैं. इसीलिए वात-रोगों में आमिष-जातीय भोजन, स्थूलता में चरबी-जातीय भोजन (चिकनाई, घी इत्यादि) तथा मधुमेह में चीनी (शर्करा एवं श्वेतसार) का परहेज करना पड़ता है.

अग्न्याशय से निकलनेवाले रस इंसुलिन से ही चीनी और स्टार्च पचता है, अर्थात् रक्त में मिलने योग्य बनता है. इंसुलिन की कमी से मधुमेह हो जाता है. मधुमेह का रोगी जो कुछ स्टार्च या कार्बोहाइड्रेट खाता है, वह रक्त में नहीं मिलता. इसलिए उसका कोई भी उपयोग शरीर नहीं कर पाता. उससे शरीर को कोई शक्ति नहीं मिलती. यही चीनी पेशाब में आती है. कुछ रोगियों की हालत यहाँ तक बिगड़ जाती है कि वे स्टार्च खाना बन्द करके प्रोटीन या वसा खाते हैं, तो उसकी भी चीनी बन जाती है और पेशाब में चीनी

जाना जारी रहता है. हालाँकि प्रोटीन से चीनी उतनी अधिक मात्रा में नहीं बनती, जितनी स्टार्च से बनती है, फिर भी एक सीमित मात्रा में चीनी रहती है. यह रोग की बढ़ी हुई दशा होती है.

मधुमेह दो प्रकार के होते हैं. मधुमेह का पहला प्रकार आम डाइबिटीज का है, जिसे प्राथमिक मधुमेह (प्राइमरी डाइबिटीज) कहते हैं. इस रोग का कारण आज भी बहुत स्पष्ट नहीं है. दूसरा प्रकार वह है जिसमें मधुमेह किसी निश्चित कारण से होता है. इसे द्वितीयक मधुमेह (सेकेंडरी डाइबिटीज) कहते हैं. मधुमेह के अधिकांश मामले प्राथमिक मधुमेह (प्राइमरी डाइबिटीज) के होते हैं. यह भी दो प्रकार का होता है -

पहला टाइप-एक (टाइप-वन डाइबिटीज) या इंसुलिन आश्रित मधुमेह (इंसुलिन-डिपेंडेंड डाइबिटीज मेलाइटस या आई.डी.डी.एम.) कहलाता है. यह प्रायः बचपन या किशोर उम्र में ही प्रकट हो जाता है. इसमें शरीर में इंसुलिन नहीं बन पाता और रोगी को जीवित रहने के लिए आजीवन इंसुलिन इंजेक्शन लेते रहना पड़ता है. सन् 1921 से पहले जब तक इंसुलिन की खोज नहीं हुई थी, तब इस प्रकार के रोगी ज्यादा समय तक जीवित नहीं रह पाते थे. अब इंसुलिन का आविष्कार हो जाने तथा जानकारियाँ बढ़ जाने के बाद इसके उचित मात्रा में उपयोग तथा उपयुक्त खान-पान, व्यायाम और सही देख-रेख द्वारा रोगी का जीवन सामान्य बनाया जा सकता है.

दूसरा टाइप-दो (टाइप-टू डाइबिटीज) या इंसुलिन अनाश्रित मधुमेह (नॉन-इंसुलिन-डिपेंडेंट डाइबिटीज मेलाइटस या एन.आई.डी.डी.एम.) है. इसमें रोगी को इंसुलिन इंजेक्शन पर आश्रित नहीं रहना पड़ता. इस प्रकार का मधुमेह चालीस वर्ष की उम्र पार करने के बाद होता है. इससे पीड़ित होने वाले अधिकांश रोगियों का शरीर वजनी होता है और उनकी दिनचर्या में शारीरिक श्रम बहुत कम होता है. इंसुलिन आश्रित मधुमेह की तुलना में यह मधुमेह कम उम्र होता है और अनेक मरीजों को तो वर्षो तक इसका पता भी नहीं चल पाता कि उन्हें मधुमेह हो चुका है.

मधुमेह के अधिकांश रोगी इंसुलिन अनाश्रित मधुमेह श्रेणी (एन.आई.डी.डी.एम.) के ही होते हैं. इसमें इंसुलिन तो बनता है, परन्तु वह कम मात्रा में उत्पन्न होने के कारण या तो अप्रभावी हो जाता है या समय से स्रावित नहीं हो पाता, जिससे कि वह रक्त शर्करा को उचित सीमा में रख सके. इसे संयमित स्तर पर लौटाने के लिए रोगी को सही व नपा-तुला खान-पान, या नियमबद्ध खान-पान के साथ मधुमेहरोधी गोलियाँ और जीवनशैली में परिवर्तन लाने की आवश्यकता पड़ती है.

द्वितीयक मधुमेह (सेकेंडरी डाइबिटीज) के भी कई रूप होते हैं. इनमें प्रमुख पुराना क्रोनिक पैन्क्रियेटाइटिस रोग है, जो प्रायः ज्यादा मद्यपान करने वाले व्यक्तियों में देखा जाता है. रस-क्रिया प्रणाली की दूसरी व्याधियों जैसे एक्रोमिगेली, कुशिंग सिन्ड्रोम, फियोक्रोमोसाइटोमा में भी मधुमेह उत्पन्न हो सकती है. कुछ दवाएँ जैसे कार्टिकोस्टीराएड का लंबे समय तक सेवन भी मधुमेह पैदा कर सकता है. जिगर के रोग लीवर सिरोसिस और हिपेटाइटिस में भी रक्त शर्करा असामान्य हो सकता है. स्त्रियों के मामले में एक खास किस्म का मधुमेह पाया जाता है, जो सिर्फ गर्भावस्था में ही प्रकट होता है. इसे सगर्भिक मधुमेह (जेस्टेशनल डाइबिटीज) कहा जाता है.

आयुर्वेद के महान चिकित्सक महर्षि 'चरक' ने भी मधुमेह का कारण कफकारी (गरिष्ठ) भोजन को माना है. पहले कफकारी आहार-विहार के कारण कफ बढ़कर प्रमेह (बार-बार पेशाब करना) उत्पन्न करता है और बाद में धातुओं के क्षीण हो जाने से वायु बढ़कर रोग लगभग असाध्य हो जाता है. आयुर्वेद में लिखा है कि अनेक कारणों से कुपित होकर जब वायु अपने रुक्ष और कषाय स्वभाव के कारण ओज को खींच लेता है और मूत्राशय में ले जाकर पेशाब द्वारा निकालने लगता है, तब मधुमेह नामक प्रमेह उत्पन्न होता है. मधुमेह के जहाँ अनेक कारण, जैसे धातुओं का क्षय आदि बताये हैं, वहीं 'चरक' ने कुछ विशेष कारणों का उल्लेख किया है : भारी, चिकने, खट्टे और नमकीन पदार्थों के अधिक सेवन से, नवीन अन्न खाने से, बहुत जल अथवा मद्य पीने से, बहुत सोने से, बहुत सूखपूर्वक बैठे रहने से, कसरत न करने से कफ, पित्त, माँस और मेद बढ़ जाते हैं. फिर उनसे आवृत्त होकर वायु ओज धातु को लेकर वस्तिस्थान में आ जाता है और असाध्य मधुमेह उत्पन्न करता है. स्टार्ची अर्थात् श्वेतसारयुक्त और चीनी वाले पदार्थ अधिक खाने पर जब यकृत उनका उपयोग ठीक से नहीं कर पाता, तब उस ग्लूकोज को, जो ओजरूप है, वायु वस्तिस्थान अर्थात् मूत्राशय में फेंक देता है. चीजों को एक जगह से दूसरी जगह सरकाने का काम वायु करता है तभी मधुमेह उत्पन्न होता है. मधुमेह के साथ-साथ मधुमेह के रोगी को जो व्रण, पाण्डु, फोड़े, घाव, रक्तचाप, दाद-खाज, मेदवृद्धि (मोटापा) आदि सहायक या पूरक बीमारियाँ होती हैं, उन सबके लिए अलग-अलग कोई चिकित्सा या चिन्ता करने की कुछ भी जरूरत नहीं होती. मधुमेह के दूर होते ही वह सब अपने-आप चली जाती हैं जैसे जड़ कट जाने पर पत्ते स्वयमेव सूख जाते हैं.

खानपान में मिलावट स्वास्थ्य के लिए बड़ी चुनौती

डॉ. मनीष मोहन गोरे
विज्ञान प्रसार
ए-50 इंस्टिट्यूशनल एरिया, सेक्टर-62 नोएडा -201 309 (उत्तर प्रदेश)

अक्सर हम अपने रोजमर्रा के खानपान में की जाने वाली मिलावट से बेखबर रहते हैं. हमारे खाद्य पदार्थों में कंकड़, रंग और दूसरे कई रसायन मिलाए जाते हैं. इनका हमारे स्वास्थ्य पर बुरा असर होता है. अब आप ही सोचिये हमारे और बच्चों के लिए दूध कितना जरूरी है और इसमें अगर पानी के साथ-साथ डिटर्जेंट जैसे पदार्थ मिलाये जाएं तो वे हमारे और बच्चों की सेहत ही नहीं जीवन को कितना नुकसान पहुंचाएंगे. फल-सब्जी और दूसरी तमाम खाने-पीने की चीजों में मिलावट आज एक सामान्य बात हो गई है. हमें इनसे सावधान रहने की जरूरत है. आइये इनसे जुड़ी समस्याओं और बचाव के बारे में जानते हैं.

भोजन से हमारे शरीर को ऊर्जा मिलती है. इस ऊर्जा से हम अपने रोजमर्रा के काम को कर पाने में सक्षम होते हैं. खाद्य पदार्थों को एक से दूसरी जगह ले जाते हुए गंदगी के संपर्क या खाना परोसते समय आवश्यक स्वच्छता का ध्यान न रखने पर कीटाणुओं का संक्रमण होता है. इस वजह से

खाना दूषित होकर खराब हो जाता है. यह घटना तो अनजाने में होती है. लेकिन जब मिलावटखोर अपने व्यक्तिगत फायदे के लिए हमारे दैनिक जीवन के खाद्य पदार्थों में तरह-तरह के मिलावटी पदार्थ मिलाकर उन्हें दूषित करते हैं तो यह जानबूझकर किया जाने वाला काम है जो एक तरह का अपराध है. क्योंकि इस क्रिया-कलाप से मानव स्वास्थ्य को खतरा उत्पन्न होता है.

आमजन की मनोदशा और बदलती जीवन शैली से मिलावटखोरी जोरों पर : हर व्यक्ति चाहता है कि उसे कम से कम कीमत में कोई खाद्य पदार्थ मिल जाए. इसके लिए बाजारों में लोग मोलभाव करते हैं. दुकानदार और मिलावटखोर खाने-पीने की सामग्रियों में मिलावट करके लोगों की इसी प्रवृत्ति का दोहन करते हैं. परंपरागत तौर पर भारतीय परिवार स्वच्छ और सेहतमंद तरीके से घर पर ही खाना पकाकर खाते हैं. उन्हें खाना पकाते समय यह मालूम रहता है कि खाने में कोई दूषित पदार्थ नहीं गया है. मगर इस बात की गारंटी बाजार में पके और बिक्री किये जा रहे खाद्य पदार्थों में नहीं होती. आधुनिक समाज में लोगों की आय में वृद्धि हुई है और काम-काज के दबाव के चलते लोगों के पास समय भी कम है. ऐसे में हर रोज घर पर खाना पकाकर खाने की गुंजाइश कम रहती है. नई पीढी अक्सर रेस्तरां और खुले स्थानों पर फास्ट फूड खाना पसंद करती है. ये जल्दी से पकाकर परोसा जाने वाला भोजन होता है जिसमें खराब गुणवत्ता के तेल, घी, मसाले और खाद्य पदार्थ शामिल किये जाते हैं. हम इस बात से अक्सर अनभिज्ञ होते हैं कि इन खाने-पीने की चीजों में मिलावट हो सकती है. जबकि सर्वेक्षण से यह बात निकलकर आई है कि हमारे देश में बाहर बेचे जाने वाले 25 से 30 प्रतिशत खाद्य पदार्थों में मिलावट रहती है.

हर स्तर पर खानपान में मिलावट : पब्लिक हेल्थ फाउंडेशन आफ इंडिया की एक ताजा रिपोर्ट के अनुसार देश में असमय होने वाली मौतों के पीछे खानपान की चीजों में मिलावट एक बड़ी वजह बन गई है. खाद्य मिलावट की शुरुआत खेतों से ही हो जाती हैं जहां उर्वरक और कीटनाशकों का अत्यधिक प्रयोग किया जा रहा है. यही कारण है कि फल-सब्जियों और अनाजों में कीटनाशकों के अवशेष उच्च सांद्रता में मिल रहे हैं. यह भी सच है कि कीटनाशक ही एकमात्र समस्या नहीं है. दूध, पनीर, तेल जैसी अनेक खाने-पीने की चीजों में मिलावट हो रही है. फल-सब्जियों, मसालों और दालों में कलरिंग एजेंट के रूप में घातक रसायनों का प्रयोग किया जा रहा है. कार्बाइड रसायन और एथिलीन गैस का प्रयोग फलों को तेजी से पकाने के लिए किया जाता है. इनका हमारी सेहत पर बहुत बुरा असर होता है. खाद्य पदार्थों में मिलावटी रसायनों का सबसे ज्यादा बुरा असर बच्चों और वृद्ध व्यक्तियों पर पड़ता है.

मिलावटखोर हमारे खाने-पीने की हर चीज में मिलावट कर रहे हैं जो हमारी सेहत के लिए नुकसानदेह साबित होता है. मीडिया में अक्सर ऐसी खबरें पढने-देखने को मिलती हैं कि खाद्य मिलावट से व्यक्ति की तबियत बिगड़ गई. अभी पिछले साल टीवी पर एक खबर आई थी कि इलाहाबाद रेलवे स्टेशन पर एक चाय बेचने वाला व्यक्ति दूध की जगह थोड़ी-थोड़ी मात्रा में सफेद रंग के पेंट का प्रयोग करता था. पश्चिमी उत्तर प्रदेश का एक चाट बेचने वाला व्यक्ति चाट के मसाले में तेजाब मिलाता था, जिसकी वजह से उसकी चाट अधिक चटपटी होती और खाने वालों की वहां लाइन लगी रहती थी. लेकिन वह व्यक्ति लोगों की जिन्दगी के साथ खिलवाड़ कर रहा था. आखिरकार ये लोग खाद्य निरीक्षण विभाग के द्वारा पकड़े गये और इन्हें पुलिस के हवाले किया गया. सवाल यह है कि ये तो कुछ उदाहरण हैं जो हमारे सामने है. मगर इनके अलावा हमारे आस-पास रोज ऐसे हजारों मिलावटखोर अपने काम को अंजाम दे रहे हैं.

त्यौहार और विशेष समारोहों में मिलावटखोरी से रहें सावधान : होली-दीवाली जैसे त्योहारों में खोया, पनीर और मिठाइयों में मिलावट एक आम बात हो गई है. जो लोग जागरूक और समझदार हैं, वे इन चीजों का सेवन नहीं करते. मगर अधिकांश लोग इन बातों से बेखबर रहते हैं और वे ही इन मिलावटखोरों का मकसद अनजाने में पूरा करते हैं. मिठाई, जूस और जैम में मिलावटखोर नान परमिटेड कलर का इस्तेमाल करते हैं जो कैंसर उत्पन्न कर सकता है.

खाद्य पदार्थों में होने वाली कुछ सामान्य मिलावट : इनसे बचने के लिए हमें जागरूक होने की जरूरत है. हमें देखना होगा कि सुबह से लेकर रात तक कौन-कौन से खाद्य और पेय पदार्थों का सेवन हम करते हैं. क्या इन पदार्थों में मिलावट हो सकती है? अगर हां तो हमें क्या सावधानियां रखनी होंगी. इस बात को हमें तय करना होगा. अलग-अलग प्रकार के खाद्य तेलों में आर्जीमोन का तेल, मिनरल आयल, केस्टर आयल मिलाकर इनकी गुणवत्ता को खराब किया जाता है और इसकी वजह से हमें हृदय रोग, यकृत में खराबी, ट्यूमर, पेट की बीमारी जैसी स्वास्थ्य समस्याएं हो सकती हैं. कोल्ड ड्रिंक, साफ्ट ड्रिंक के नाम पर ढेर सारी

खाने-पीने की सामग्री	मिलावट की सामग्री	स्वास्थ्य पर हानिकारक असर
दूध	पानी और स्टार्च	पेचिश
खोया	स्टार्च और चीनी	निम्न पोषण
चीनी	चाक पाउडर	पेट में दर्द
काफी पाउडर	ईमली-खजूर के बीज का पाउडर	दस्त, चक्कर आना, जोड़ों में दर्द
चने की दाल और अरहर दाल	खेसारी दाल	लैथिरिज्म कैंसर
चिली पाउडर	ईंट का चूर्ण या लकड़ी का बुरादा, कृत्रिम रंग	पेट में मरोड़, कैंसर
मिठाई, जूस, जैम	नान परमिटेड कलर	नान परमिटेड कलर कैंसरजनक होते है
शहद	चीनी और पानी	पेट की बीमारी
दाल	कोलतार डाई	पेट में बीमारी, अल्सर
गुड़	वाशिंग सोडा, चाक पाउडर	उल्टी, दस्त
तेल	आर्जीमोन का तेल, मिनरल आयल, केस्टर आयल	आँख की रोशनी में कमी, हृदय रोग, यकृत में खराबी, ट्यूमर, पेट की बीमारी

कम्पनियां बाजार में नकली ड्रिंक बेच रही हैं. इनमें सेहत के लिए नुकसानदेह रंग, प्रिजर्वेटिव और दूसरे रसायन मिलाये जाते हैं.

सबसे पहले हम इस बात को समझ लें कि यदि किसी खाने-पीने की चीज में हमारी लापरवाही से या प्राकृतिक रूप से कोई नुकसानदेह पदार्थ मिल गया है तो इसे मिलावट नहीं बल्कि संक्रमण कहेंगे. अब देखिये अगर हमने बिना हाथ धोये कोई शुद्ध खाने की चीज को भी खा लिया तो इससे हमारे हाथों में पाये जानेवाले बैक्टीरिया-वायरस सेहत को नुकसान पहुंचा सकते हैं. इसलिए बच्चों और बड़ों को व्यक्तिगत स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना जरूरी है. छोटी-बड़ी साफ-सफाई की आदतों जैसे कि हाथ धोकर भोजन करना, रोज नहाना, नाखून-बाल नियमित कटवाना इन्हें अगर हम अपने व्यवहार में शामिल कर लें और उन्हें पालन करें तो इन संक्रमणों से बच सकते हैं.

आइये अब देखते हैं कि खाद्य पदार्थों में किन किन चीजों की मिलावट की जाती हैं. खाने-पीने की चीजों का स्वाद और जायका बढाने के लिए अक्सर उनमें नान परमिटेड कलर मिलाया जाता है. अगर इन कलर के स्रोत प्राकृतिक हों तो ये नुकसान नहीं पहुंचाते. लेकिन अगर ये सिंथेटिक हैं तो इनसे सेहत खराब हो जाती है. चुकंदर से मिलने वाले प्राकृतिक रंजक से बेटानिन नामक एक मैजेंटा डाई और पीले-नारंगी रंग की बीटा कैरोटिन डाई बनते हैं. इनका प्रयोग हानिकारक नहीं होता. मगर नीले रंग के इंडिगो कार्मिन, लाल एलुरा रेड एसी और पीले रंग के क्विनोलिन येलो डब्लूयूएस सिंथेटिक कलर होते हैं, जो कि हमारी सेहत को नुकसान पहुंचाते हैं. इन्हें अक्सर केचप, जैम, कैंडी, चेरी जैसे खाद्य पदार्थों में मिलाया जाता है. एक बार प्रयोग हो गई चाय की पत्तियों में कापर आर्सेनाइट मिलाकर वह चाय दोबारा बेची जाती है. पनीर और कंफेक्शनरी को रंग देने के लिए उनमें अक्सर रेड लेड या वर्मिलियान जैसे घातक रसायन मिलाये जाते हैं, जो सेहत को भारी नुकसान पहुंचाते हैं. आजकल बाजार में गलियों-मोहल्लों में मिलने वाले चाइनीज फूड की भरमार है. इनमें सिंथेटिक कलर खूब मिलाया जाता है. इन्हें खाने से हमें बचना चाहिए.

दाल, चावल, गेंहू जैसे अनाजों में बालू-कंकड़ मिलाये जाते हैं जिनसे अनाज की गुणवत्ता खराब होती है. फलों को जल्दी पकाने के लिए एथिलीन जैसे सिंथेटिक रसायन मिलाये जाते हैं. इससे फल की प्राकृतिक गुणवत्ता में गिरावट आती है और यह प्राकृतिक रूप से पके हुए फल जैसा सेहतमंद भी नहीं रह जाता.

मिठाई और स्नैक्स में लेड, मरकरी और आर्सेनिक जैसी धातुएं मिलायी जा रही हैं. हालांकि बेहद अल्प मात्रा में हमारे शरीर को इन धातुओं की जरूरत होती है, लेकिन इन खाद्य पदार्थों में असंतुलित अनुपात में धातुओं की मिलावट नुकसानदेह साबित हो रही है. ईंट भट्ठों और राष्ट्रीय राजमार्ग के नजदीक उगाई जाने वाली सब्जियों में अक्सर उच्च मात्रा में भारी धातु पाए जाते हैं. हमें नहीं मालूम पड़ता कि जिस

दुकानदार से हमने सब्जी खरीदी है, वह कहां पर अपनी सब्जियां उगाता है. उर्वरक और रासायनिक कीटनाशकों में भी बड़ी मात्रा में नुकसानदायक रसायनों का प्रयोग होता है. एंडोसल्फान, जैसे अनेक कीटनाशक विश्व में बैन हैं मगर भारत में इनका धड़ल्ले से इस्तेमाल किया जा रहा है. सरकार इस ओर ध्यान देकर उचित नियम बना सकती है.

फास्टफूड के बजाय होममेड फूड को दें तरजीह : एक रिपोर्ट के अनुसार हमारे देश में फूड सर्विस इंडस्ट्री को 60 से लेकर 80 प्रतिशत खाद्य जनित बीमारियों के लिए जिम्मेदार माना गया है. सड़क किनारे, खुले में और रेस्तरां में बिकने वाले अनेक फास्ट फूड सेहत के दुश्मन साबित हो रहे हैं. इनमें तेल, मसाले का बहुत ज्यादा प्रयोग होता है. इन्हें ज्यादा देर नहीं पकाया जाता. इन्हें बनाने में स्वच्छता का भी ध्यान कम रखा जाता है. अधिकांश फास्ट फूड को दो-चार दिनों तक सुरक्षित रखने के लिए उनमें प्रिजर्वेटिव रसायनों का प्रयोग किया जाता है. सबसे अहम बात खाद्य पदार्थ पकाए जाने से 2-4 घंटे तक खाने के लिए उपयुक्त होता है. उसके बाद उसकी पोषण गुणवत्ता घटने लगती है. प्रिजर्वेटिव के तौर पर प्रयोग होने वाले नाइट्राइट, मेटा सल्फाइट और मोनोसोडियम ग्लूटामेट जैसे रसायन सेहत को हानि पहुंचाते हैं.

सरसों में आर्जीमोन बीजों की मिलावट करने से दिल्ली में 1998 में ड्राप्सी जैसी गंभीर बीमारी को हमने झेला है. दूध में अक्सर डिटर्जेंट की मिलावट से जुड़ी शिकायत खबरों में आती हैं. हमें इनसे सावधान रहने की जरूरत है.

मिलावट को मात देने के लिए सतर्कता जरूरी : एक उपभोक्ता की हैसियत से हम सभी को शुद्ध और खाने योग्य पदार्थ मिलनी चाहिए. खाने-पीने की खुली चीजों जैसे कि फास्ट फूड, चायनीज फूड से परहेज रखना हमारे लिए अहम है. दूसरा अनाज खरीदते समय हमें वहीं पर कंकड़-पत्थर जैसी दिखाई देने वाली मिलावट की जांच करने के बाद ही खरीदनी चाहिए. सब्जी-फल, मिठाई, जूस जिनमें नान परमिटेड कलर मिलाये जाते हैं, उन्हें घर लाकर रंग छोड़ने के प्रयोग को करके देखना चाहिए. किसी भी पैक्ड फूड आइटम की एक्सपायरी डेट, इंग्रेडीएंट की सूची, प्रिजर्वेटिव आदि के बारे में दी गई जानकारी को देखना बहुत जरूरी है. खाद्य संरक्षण से संबंधित उपभोक्ता और सामाजिक संस्थाओं से जुड़कर सब्जी-फल और दूसरी खाने-पीने की चीजों की जांच खाद्य निरीक्षण विभाग से करवानी चाहिए. फूड इंसपेक्टर के संपर्क में रहकर मिलावटखोरों को गलतियों का दंड दिलवाना चाहिए. इससे मिलावटखोर सावधान हो जायेंगे और आगे से मिलावट करने से कतरायेंगे. केंद्र और राज्य सरकार में खाद्य निरीक्षण से जुड़े विभाग इन समस्याओं की निगरानी रखते हैं. केंद्र सरकार के स्तर पर स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के सीधे नियन्त्रण में फूड सेफ्टी एंड स्टैण्डर्ड अथारिटी ऑफ इंडिया नामक एक संस्था है जो खाद्य पदार्थों की मैन्युफेक्चरिंग, स्टोरेज, वितरण, बिक्री और आयात पर निगरानी रखते हुए मानव उपभोग के लिए सुरक्षित खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता को तय करती है.

खाद्य पदार्थों में मिलावट से बचने का सबसे अच्छा तरीका है कि हम इनको लेकर जागरूक रहें और समय-समय पर इन सामग्रियों में मिलावट की जांच करते रहें. गांवों में रहने वाले लोगों में शहर की तुलना में खाद्य मिलावट को लेकर जागरूकता का प्रायः अभाव देखा जाता है. इसके लिए जागरूकता अभियान चलाकर लोगों को सचेत किया जा सकता है. ये अभियान और कार्यक्रम अगर ग्रामीण क्षेत्र की भाषा-बोली में और उनके लोककलाओं से जोड़कर चलाये जाएं तो उनका ज्यादा असर ग्रामीणों पर होगा. नुक्कड़-नाटक इसके लिए सबसे उपयुक्त माध्यम हो सकता है. इसमें लोग नाटक के बहाने खाद्य पदार्थों में मिलावट की समस्या के बारे में जान लेंगे और इससे बचाव को लेकर सचेत भी हो जायेंगे.

खाने-पीने की चीजों में मिलावट के इस पूरे परिदृश्य को देखकर तीन मुख्य बातें समझ में आती हैं. पहली बात हमें व्यक्तिगत स्तर पर स्वच्छता की आदत डालनी चाहिए और बच्चों को भी ऐसा करने के लिए समझाना चाहिए. दूसरा जहां तक संभव हो हम घर का बना ताजा भोजन खाएं, लेकिन घर से दूर होने पर या सफर के दौरान कोशिश करें कि खुली चीजें या स्ट्रीट फूड का सेवन ना करें. तीसरी महत्वपूर्ण बात हम मिलावट को लेकर सचेत रहें और अपने परिजनों-मित्रों को भी सतर्क रहने को कहें. इस समस्या से हमारे स्वास्थ्य को बहुत खतरा होता है. इसलिए खाद्य पदार्थों में मिलावट को लेकर सावधानी और जागरूकता बेहद आवश्यक है.

संदर्भः

1. फूड एडल्टरेशनः सोर्सेस, हेल्थ रिस्क्स एंड डिटेक्शन मेथड्स, संगीता बंसल, मनीषा मंगल, अपूर्वा सिंह एवं संजीव कुमार
2. फूड एडल्टरेशन एंड कंट्रोल मेकेनिज्म, एस.पी. वसिरेड्डी
3. भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार का वेबसाइट www.fssai.gov.in

एक नये ज्यामितीय आकार की खोजः स्कूटाएड

अमिताभ प्रेमचन्द्र
अनुकम्पा,वाई 2 सी, 115/6,त्रिवेणीपुरम,
झूँसी, इलाहाबाद-19,

विज्ञान के क्षेत्र में होने वाली अकल्पनीय प्रगति के बाद आज भी विज्ञानी कभी-कभी किसी नयी खोज से इस प्रकार अचम्भित रह जाते हैं कि उस नई जानकारी को अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर किस प्रकार परिभाषित करें- यह समझना उनके लिये कठिन हो जाता है. ऐसी ही एक खोज है स्कूटाएड.

प्रकृति में असंख्य आकार पाये जाते हैं. विभिन्न आकारों का गणितीय या ज्यामितीय वर्णन करके कुछ आधारभूत आकारों की व्याख्या की गई है, जैसे वृत्त, चतुर्भुज, बेलन, शंकु, पिरामिड, प्रिज़्म आदि. परन्तु अब एक नये आकार की जानकारी सामने आयी है जो हमारे लिये तो नयी है परन्तु प्रकृति में बहुतायत से चारो तरफ पायी जाती है. इसे ही नाम दिया गया है स्कूटाएड.

कुछ दिनों पहले तक विज्ञानी स्कूटाएड शब्द से ही अपरिचित थे. इस नये शब्द का प्रयोग उनके द्वारा अब तक अज्ञात एक आकृति के लिए किया गया है.

सीधे सरल शब्दों में कहें तो स्कूटाएड एक त्रिविमीय आकार है जो किसी भी अन्य त्रिविमीय आकार जैसे शंकु, बेलन या प्रिज़्म से मिलता जुलता तो है परन्तु इनमें से कोई भी नहीं है. वास्तविकता यह है कि यह अपने आप में एक सर्वथा नवीन आकार है. यह अपने स्वरूप में इतना विशिष्ट है कि वैज्ञानिक इसे अभी भी इसके भिन्न-भिन्न उपयोगों और अन्य आकारों से इसकी समानताओं के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करने का प्रयत्न कर रहे हैं - परन्तु सफलता दूर हैं. परिभाषाओं के ये प्रयास अत्यन्त रोचक हैं - उदाहरण के लिए इसे एक ऐसा पंचकोणीय बेलन कहा जा रहा है जो कि एक सिरे पर तराशा हुआ दिखता है जबकि एक अन्य परिभाषा इसे विकृत प्रिज़्म बता रही है. सच तो यह है कि उपलब्ध ज्ञान के आधार पर इसे परिभाषित करना आसान नहीं है. इस अद्भुत खोज करने वाले शोधदल के सदस्य, लेहाई विश्वविद्यालय, यू.एस.ए. के जैव अभियान्त्रिकी विभाग में जैव भौतिकीविद् हावियर ब्यूसेटा इसकी एक बड़ी चमत्कारी परिभाषा देते हुए कहते हैं कि यह आकार ऐसा है जैसे कि एक प्रिज़्म में ज़िपचेन लगी हो.

इस अद्भुत शोधकर्ता दल में कई राष्ट्रों के विभिन्न विश्वविद्यालयों और संस्थानों के भिन्न भिन्न कार्यक्षेत्र और अनुभव वाले वैज्ञानिक शामिल हैं. इनमें सर्वप्रमुख हैं सेविल विश्वविद्यालय स्पेन के कोशिकीय जीवविज्ञान (सेल्युलर बयॉलॉजी) विभाग के लुई एम. एस्कुडेरो, जो इस शोध दल के मार्गदर्शक हैं. इसी विभाग के इनके अन्य सहयोगी गण हैं- पेट्रो गोमेज़-गाल्वेज, पाब्लो विन्सेन्ट-मुन्यूएरा, एन्टोनियो टागुआ, क्रिस्टीना फोर्या, एना एम. कास्त्रो, मार्टा लेट्रान, मरीना बरमुडेज़-गालार्डो एवं ऑस्कर सेरानो-पेरेज़-हिगुएरास. इसी सेविल विश्वविद्यालय के अनुप्रयुक्त गणित विभाग की क्लारा ग्रीमा एवं एल्बर्टो मार्क्वेज़ तथा एण्डालूशियन सेन्टर ऑफ़ डेवलपमेंटल बयॉलजी, मैड्रिड, स्पेन की आन्द्रिया वेलोंसिया-एक्सपोज़ीटो, सोल-सोलिटॉस, मारिया डी.मार्टिन बरमूडो भी इस शोध में उक्त दल के साथ कार्यरत हैं. इनके अतिरिक्त सेवेरो ओकोआ सेन्टर ऑफ मॉलिक्यूलर बयॉलजी, मैड्रिड, स्पेन एवं सेन्ट जार्ज यूनिवर्सिटी ऑफ लंडन, यू.के. नामक दोनों ही संस्थानों में कार्य कर चुकी फ्लोरेन्सिया कावोडेसी तथा लेहाई विश्वविद्यालय, बेथेलहम, यू.एस.ए.

के जैव अभियान्त्रिकी तथा रसायन एवं जैव आण्विक अभियान्त्रिकी विभाग के हावियर ब्यूसेटा का भी इस शोध कार्य में अभिन्न योगदान रहा है. सर्वप्रथम इस शोध की परिकल्पना और शोध की दिशा, परीक्षण विधियों इत्यादि की रचना लुई एम. एस्कुडेरो ने हावियर ब्यूसेटा, क्लारा ग्रीमा और अल्बर्टो मार्क्वेज़ की सहायता से की. शोध के लिए कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर की रचना और विश्लेषण पेड्रो-गोमेज-गाल्वेज़ तथा पाब्लो विन्सेन्ट-मुन्यूएरा ने की. अन्य वैज्ञानिकों ने प्रेक्षण, चित्रण एवं आँकड़ों के अध्ययन-विश्लेषण हेतु अपनी सेवाएँ प्रदान कीं. अन्त में सभी की सहायता से एस्कुडेरो और ब्यूसेटा ने शोधपत्र तैयार किया. शोध के लिए आवश्यक धन और संसाधन जुटाने में स्पेन सरकार के विभिन्न मंत्रालयों और लेहाई विश्वविद्यालय ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई.

यदि इस शोध को संक्षेप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की जाए तो कुछ ऐसी व्याख्या सामने आती है- प्राणियों का जैसे-जैसे विकास होता है वैसे वैसे ऊतकों में वक्रता आती जाती है तथा अंगों के त्रिविमीय जटिल संकुल का निर्माण होता है. इस शोध में गणितीय व्याख्या के सहारे यह दर्शाया गया है कि एपिथीलियम के झुकाव का कारण ऊर्ध्वाधर अक्ष (एपिको बेसल एक्सिस) में कोशिकाओं में अन्तर्वेशन (इन्टरकैलेशन) है. इस घटना के कारण कोशिका के शीर्ष और आधार की ओर संलग्न पड़ोसी कोशिकाएँ एक नया स्कूटाएड आधार ग्रहण कर लेती हैं. विभिन्न ऊतकों के गहन अध्ययन और विश्लेषण से सिद्ध होता है कि प्राणियों में संरचना-विकास के क्रम में यह एपिको बेसल एक्सिस की दिशा में अन्तर्वेशन एक सामान्य घटना है.

जब शोध दल ने इस नये ज्यामितीय आकार के अध्ययन के लिए गणितज्ञों की सहायता ली तो ज्ञात हुआ कि गणित में ऐसे किसी आकार का वर्णन ही नहीं है. अतः गणित के ग्रन्थों में इस आकार के लिये कोई नाम न होना स्वाभाविक है.

स्कूटाएड के संबंध में सबसे विस्मयकारी बात यह है कि यह आकार हमारे भीतर बाहर सर्वत्र उपस्थित है, विशेषकर प्राणियों में. यह विचित्र आकार बहुकोशीय प्राणियों में अधिक संख्या में पाया जाता है और कहीं न कहीं समस्त प्राणियों के मध्य पाई जाने वाली आकार प्रकार की विभिन्नता के लिए उत्तरदायी है. वैज्ञानिक ब्यूसेटा महोदय कहते हैं कि इस आकार की जानकारी होने से हमें समझ में आयेगा कि कैसे पृथ्वी पर विभिन्न बहुकोशीय प्राणियों का उद्भव और विकास हुआ होगा? विकास की यात्रा को संपूर्णता में समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि प्राणियों के विकास क्रम में जब विभिन्न कोशिकाएँ जन्म लेकर विकसित होती हैं, तो वह कैसे एक दूसरे के साथ व्यवहार करती हैं और कैसे आकार में वृद्धि अथवा संरचना विकास होता है. बहुकोशीय प्राणियों के संबंध में सबसे विस्मयकारी यह जानना है कि एक प्राणी के भीतर भिन्न-भिन्न प्रकार की कोशिकाएँ कैसे एक दूसरे के साथ सामंजस्य स्थापित करके एक इकाई का गठन करती हैं और उसे गतिमान और कार्यशील बनाए रखती हैं.

चाहे मनुष्य हो या प्लैटिपस या कोई अन्य बहुकोशीय प्राणी- इन सभी का विकास एक अकेली कोशिका से आरम्भ होता है और फिर द्विगुणन क्रिया की शृंखला द्वारा अनेक कोशिकाएँ बनती जाती हैं. इन्हीं एपीथीलियल कोशिकाओं से आगे जाकर ऊतक और अंगों का निर्माण होता है. ये कोशिकाएँ विभिन्न स्तरों में एकत्र होती हैं और फिर विभिन्न आकार प्रकार के अंगों का निर्माण करती हैं. साधारण भाषा में कहें तो यह क्रिया एक समान आकार के सामानों को विभिन्न आकार के गत्तों या डिब्बों में सफलतापूर्वक सुगठित और सुव्यवस्थित करने के समान है. एकल कोशिकाएँ प्राणी के पूर्ण आकार के अनुसार अपना आकार व्यवस्थित करती हैं और इस प्रकार भिन्न-भिन्न आकार के प्राणियों की उत्पत्ति

सम्भव होती है.

हावियर ब्यूसेटा इस प्रक्रिया की तुलना रोमन मेहराबों से करते हुए कहते हैं कि आप चतुर्भुजाकार पत्थरों से खम्भे बना सकते हैं, परन्तु मेहराब बनाने के लिए आपको पत्थर तराश कर एक भिन्न निश्चित आकार बनाना पड़ता है. मेहराब को गोलाई प्रदान करने के लिए पत्थर को बाहरी सिरे पर चौड़ा और अन्दरूनी सिरे पर पतला करना पड़ता है. किन्तु इससे पत्थर चतुर्भुज न रहकर एक ऐसे पिरामिड का रूप ले लेता है, जिसके शीर्ष की नोक तराश कर समतल की गई हुई हो. गणित में इस आकार को शंकुछिन्नक या फ्रस्टम कहते हैं.

प्राणियों में भी कुछ इसी प्रकार एपीथीलियल कोशिकाओं की कई तहें मिलकर पंचकोणीय या षट्कोणीय आधार वाले प्रिज़्म के आकार में व्यवस्थित होती हैं. जैसे-जैसे ऊतकों का विकास होता है, कुछ कोशिकाओं का आकार विकृत हो जाता है और उनके दोनों सिरे छोटे बड़े हो जाते हैं. ठीक मेहराब के पत्थरों की तरह कोशिकाओं की बाहरी सतह बड़ी हो जाती है और अन्दरूनी सतह छोटी. लेकिन जीवविज्ञानियों के अनुसार कोशिकाओं की सतह फ्रस्टम के अनुरूप मात्र चतुर्भुजीय न होकर और अधिक भुजाओं की भी हो सकती हैं. तथापि हावियर ब्यूसेटा और सहयोगियों के अनुसार हमेशा ऐसा नहीं होता. वस्तुतः कोशिकाओं की त्रिविमीय व्यवस्था अत्यन्त अनिश्चित है.

कोशिकाओं के आकार में वक्रता के अध्ययन के लिए शोधकर्मियों के समूह ने सर्वप्रथम एक कम्प्यूटरीकृत परिकल्पना का सहारा लिया और इसके लिए उन्होंने 'वोरोनोई चित्रण' की सहायता से कोशिकाओं के व्यवस्थाक्रम की परिकल्पना की. आँकड़ों की वैधता के परीक्षण के लिए 'कोल्मोगोरोव-स्मिरनोव परीक्षण' का सहारा लिया गया.

जब हम ईंटों की सहायता से किसी आकार का निर्माण करते हैं, तो ईंटों को एक दूसरे से सटाकर रखते हैं और एक निश्चित आकार का निर्माण होता है जो स्थिर होता है. इसी प्रकार प्राणियों में कोशिकाएँ एक दूसरे के साथ भुजाओं और कोणों पर स्पर्श करती हैं और एक निश्चित आकार में व्यवस्थित रहती हैं. परन्तु भवनों के विपरीत प्राणियों में यह व्यवस्था स्थिर नहीं अपितु जीवित गतिमान व्यवस्था है- जैसे कि शरीर की क्रियायें या अंग संचालन. अतः एक निश्चित आकार को बनाए रखने के लिये कोशिकाओं को ऊर्जा व्यय करनी पड़ती है और स्पर्श की सतह जितनी अधिक होती है कोशिकाओं को उतनी ही अधिक ऊर्जा का व्यय करना पड़ता है. स्पष्ट है कि कोशिकायें इस प्रक्रिया के लिये ऊर्जा की न्यूनतम मात्रा व्यय करना चाहेंगी क्योंकि

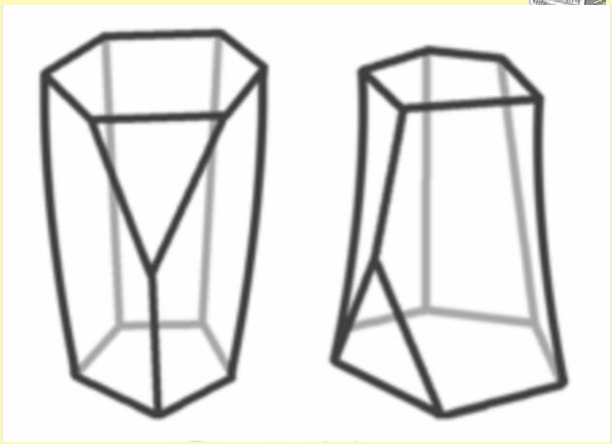

सूक्ष्म आकार के कारण कोशिका में उत्पन्न ऊर्जा की मात्रा सीमित होती है. इसके अतिरिक्त ऊर्जा का व्यय उपापचय या अन्य शारीरिक प्रक्रियाओं के लिए भी होता है. शोधदल के अनुसार जब गणनाओं के सहारे आकार का अध्ययन किया गया तो पाया गया कि जब भी कोशिकाएँ स्कूटाएड आकार में होंगी तो स्पर्श की सतह न्यूनतम होगी और व्यवस्थाक्रम सर्वाधिक कुशल होगा. अतः जहाँ कहीं भी आकार समतल नहीं होती है या उसमें वक्रता होती है, हर उस स्थान पर कोशिकाओं का आकार स्कूटाएड होता है. जैव भौतिकीय तर्कों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि कोशिकाओं का आकार स्कूटाएड होने पर ऊर्जा व्यय न्यूनतम एवं त्रिविमीय संरचना स्थिर रहती है. अतः वक्र संरचनाओं के विकास के लिए प्रकृति ने कोशिकाओं का स्कूटाएड आकार नियत किया है.

अगर साधारण शब्दों में स्कूटाएड आकार की व्याख्या की जाए तो सर्वप्रथम आप एक बेलनाकार टेन्ट की कल्पना करें जिसके दोनों सिरे वृत्ताकार न होकर पंचकोणीय हो और टेन्ट में अन्दर जाने के लिये आधार के एक कोण पर ज़िप चेन लगी हो जो आधी ऊँचाई तक खुल सकती हो और जिसे खोल कर आप टेन्ट फैला कर एक षट्कोणीय आधार वाले प्रवेश का निर्माण कर सकते हों. अर्थात् एक ऐसा बहुफलक जिसका शीर्ष पंचकोणीय हो आधार षटकोणीय हो और जिसमें से तराश कर एक त्रिभुज निकाल दिया गया हो. अपरिष्कृत शब्दों में यही है स्कूटाएड. इस विवरण के आधार पर आकार की परिकल्पना थोड़ी मुश्किल दिखती है. शोधकर्मियों ने भी जब पहली बार इस आकार की व्याख्या करनी चाही तो उन्होंने गणितज्ञों की सहायता ली. कारण था कि आकार तो दिख रहा है परन्तु उपलब्ध जानकारी के आधार पर किस प्रकार शब्दों में परिभाषित किया जाए यह कठिन लग रहा था? ज्यामितीय आकारों का अध्ययन

करने वाले विद्वानों ने एक स्वर से कहा कि अभी तक ऐसे किसी भी आकार का कोई विवरण गणित के किसी भी ग्रंथ में उपलब्ध नहीं है. ऐसे में शोधकर्मियों ने इस आकार के नामकरण के लिये अपने आसपास के परिवेश पर नजर डाली तो उन्हें एक आकार दिखाई दिया जो बीटिल कीट के शरीर के पिछले हिस्से से कुछ साम्यता रखता था. चूंकि अंग्रेजी में बीटिल के शरीर के पिछले हिस्से को स्कूटेलम कहते हैं, तो बस वहीं से स्कूटाएड शब्द की उत्पत्ति हो गयी. इस नामकरण के पूर्व शोधदल के सदस्यों ने परिहास में इस आकार का नाम शोधदल के नेता लुई एस्कुडेरो के नाम पर एस्कुटाएड रखा हुआ था.

एपिथीलियल कोशिकाओं के बहुस्तरीय व्यवस्थाक्रम से बहुकोशीय प्राणियों में शनैः शनैः विभिन्न आकारोंवाले अंगों का विकास होता है. बेलनाकार, दीर्घवृत्ताकार या वृत्ताकार अंगों के विकास हेतु कोशिकाओं को अपने ऊर्ध्वाधर अक्ष पर आकार में आधारभूत परिवर्तन करना पड़ता है. वैज्ञानिकों को एपिथीलियल कोशिकाओं की संरचना विकास के क्रम में त्रिविमीय व्यवस्थाक्रम के संबंध में अभी तक अधिक जानकारी नहीं थी- विशेषकर वक्र सतहों के परिप्रेक्ष्य में.

कोशिकाओं का स्कूटाएड आकार अपनाकर वक्र सतहों का निर्माण करने संबंधी शोध कार्य विज्ञान के अत्याधुनिक यंत्रों की सहायता से संभव हो सका है.

वोरोनोई चित्रण को संभव करने के लिए सर्वप्रथम कोशिकाओं के विभिन्न कोणों से आधुनिक सूक्ष्मदर्शियों की सहायता से अनेक चित्र लिए गए और फिर व्यवस्थित कर त्रिविमीय चित्र बनाए गए. ड्रोसोफ़िला की लारग्रन्थियों के चित्रण के लिए 'निकॉन लेसर स्कैनिंग कोनोफ़ोकल सूक्ष्मदर्शी का प्रयोग किया गया. जबकि भ्रूण और अण्डाशय के चित्र लेने के लिए 'लाइका एस.पी.ई. कोनोफ़ोकल सूक्ष्मदर्शी' का प्रयोग किया गया. इसी प्रकार जेब्राफ़िश के भ्रुण का अध्ययन करने के लिए 'निकॉन ए 1 आर - इन विवो कोनोफ़ोकल सूक्ष्मदर्शी का प्रयोग किया गया.

जब कोशिकाओं की व्यवस्था का अध्ययन करते हुए कोशिका की शीर्ष और आधार सतहों को चिन्हांकित कर वोरोनोई चित्रण किया गया तो पाया गया कि कोशिकाओं के आकार की माप के आँकड़े पूर्वस्थापित अवधारणाओं को खंडित कर रहे हैं. कोशिकाओं की पड़ोसी कोशिकाएँ शीर्ष और आधार पर भिन्न भिन्न पाई गयी. जबकि पूर्वस्थापित अवधारणाओं के अनुसार दो पड़ोसी कोशिकाओं के शीर्ष और आधार परस्पर स्पर्श करने चाहिए. यह परिवर्तन केवल कोशिकाओं के ऊर्ध्वाधर अक्ष पर अन्तर्वेशन के कारण संभव है. अतः कोशिकाओं का आकार पूर्वमान्यतानुसार प्रिज़्म या फ्रस्टम न होकर कुछ भिन्न होगा. आकार में यह परिवर्तन हर उस स्थान पर मिला जहाँ कोशिकाओं को वक्र सतह का निर्माण करना था जैसा कि जेब्राफ़िश के भ्रूण के विकास या ड्रोसोफ़िला की लारग्रन्थि या अण्डाशय के विकास के अध्ययन के दौरान पाया गया.

चूंकि यह सारी जानकारी शोध समूह को अभी तक केवल कम्प्यूटर के माध्यम से प्राप्त हुई थी, तो शोधकर्मियों ने इस जानकारी को वैधता दिलाने के लिए प्रकृति में इसकी खोज आरम्भ की. उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि प्रकृति में तो कोशिकाओं का यह आकार प्रचुरता में उपलब्ध है. शोध के लिए ज़ेब्राफ़िश के एपिथीलियम और फ्रूट फ्लाई के भ्रूण के विकास का अध्ययन किया गया तो विज्ञानियों ने देखा कि कैसे एकल एपीथीलियल कोशिकाएँ द्विगुणन द्वारा बढ़ती हैं फिर कई स्तरों में एकत्र होती हैं और स्कूटाएड आकार लेकर विभिन्न अंगों जैसे लारग्रन्थि, अण्डाशय आदि का निर्माण करती हैं. भ्रूण के विकास क्रम में एपिथीलियल कोशिकाओं में आश्चर्यजनक संरचनात्मक परिवर्तन होते हैं और सामान्य सरल कोशिकाओं में झुकाव, गोलाई और वक्रता आ जाती है. किसी भी वक्र सतह के निर्माण के लिए एपिथीलियम की संरचना में आधारभूत परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है. हमारी पूर्व जानकारी के आधार पर हम मानते थे कि यह परिवर्तन कोशिका के चतुर्भुजाकार को प्रिज़्म या फ्रस्टम में परिवर्तित करता होगा, परन्तु इस नवीनतम शोध के दौरान यह देखा गया कि हमारी उपलब्ध जानकारी के विपरीत कोशिकाएँ एक नया स्कूटाएड आकार प्रदर्शित करती हैं. यह स्कूटाएड आकार हर उस हिस्से में बहुतायत में था जहाँ आकार में वक्रता थी. स्वाभाविक रूप

से ऊतकों की सीधी सपाट सतह पर यह आकार नहीं मिलता. साथ ही कोशिकाओं का यह स्कूटाएड आकार विकसित हो रही कोशिकाओं के समूह में उपस्थित सर्वाधिक विकसित कोशिकाओं में ही पाया जाता है.

हावियर ब्यूसेटा कहते हैं कि हम लोग जिस प्रकार के शोध में संलग्न हैं, उसमें सामान्यतया किसी उपलब्धि का नामकरण कर पाना सम्भव नहीं होता. हम अपनी इस 'नामकरण' की उपलब्धि से संतुष्ट हैं. पहले पहल तो हमने ऐसा सोचा भी नहीं था कि इस आकार का पहले से कोई नाम ही उपलब्ध नहीं होगा क्योंकि ज्यामिति, विज्ञान की सबसे प्राचीन विधाओं में से एक है. परंतु आशा के विपरीत नाम नहीं मिला. हाँ, यह अवश्य है कि नामकरण प्रसंग पर इतनी चर्चा के बाद उम्मीद है कि लोग इस शब्द को और इसी बहाने हमारे शोध दल को याद रखेंगे.

सर्वप्रथम 'नेचर कम्यूनिकेशंस' नामक पत्रिका के जुलाई 2018 अंक में प्रकाशित 'ए जियोमेट्रिकल सोल्यूशन टु थ्री डॉयमेंशनल पैकिंग ऑफ एपिथीलिया' नामक शोधपत्र द्वारा जब यह सूचना मिली कि विज्ञानियों के दल ने एक नये ज्यामितीय आकार की खोज की है तो पहला सवाल हुआ कि आकार नया कैसे हो सकता है? जो कुछ भी प्राकृतिक रूप से सर्वसुलभ है और वह सर्व ज्ञात है, इसमें नया क्या? नये आकार से तात्पर्य क्या है? क्या यह आकार नवनिर्मित है? क्या यह अज्ञात था? क्या इसकी व्याख्या पहली बार हुई है?

इन सारे प्रश्नों के उत्तर में नात्रेदाम विश्वविद्यालय में गणित के विद्वान मैथ्यू गुर्स्की कहते हैं कि मूलतः आकार में नया कुछ भी नहीं है. ज्यामिति के अनुसार असंख्य आकार हो सकते हैं. स्कूटाएड भी एक त्रिविमीय आकार है. हावियर ब्यूसेटा भी इस तर्क से सहमत हैं कि आकार असंख्य हैं. इसी तर्क के अनुसार स्कूटाएड एक प्रिज़्मटाएड है, जिसमें एक अतिरिक्त फलक है. परन्तु यहाँ नया यह है कि स्कूटाएड बहुकोशीय प्राणियों में एपिथीलियल कोशिकाओं का विशेष व्यवस्थाक्रम है और इसका प्रमाण पहली बार सामने आया है. स्कूटाएड की जानकारी होना, उसकी प्रमाण सहित व्याख्या और वर्णन तथा आकार विशेष की उपयोगिता ही इसे नया बनाती है. उदाहरण के लिये मानव को सबसे पहले पहिये का ज्ञान हुआ फिर वृत्त का और फिर पाई के मान का और फिर उसके बाद बारी आई उसके नाम की-जबकि पाई का मान तो प्रथम पहिये के निर्माण के समय से ही उसमें समाहित था!

इसी प्रकार स्कूटाएड मात्र आकार नहीं है. यह आकार ही बहुकोशीय प्राणियों के उद्भव और विकास का महत्वपूर्ण आधार है. सतह पर उपस्थित अतिरिक्त फलक के कारण कोशिकाओं को मुड़ने या वक्र होने में सहायता मिलती है और कोशिकाएँ अंगों का निर्माण कर पाती हैं. इस तथ्य की जानकारी हमें तब हुई जब हम कोशिकाओं के व्यवस्थाक्रम के महत्वपूर्ण प्रश्न पर शोध कर रहे थे.

कोशिकाओं के व्यवस्थाक्रम की विस्तृत जानकारी होना इसलिये भी आवश्यक है, क्योंकि भिन्न भिन्न स्थान पर विभिन्न दशाओं में कोशिकाओं में विभिन्न प्रकार से वक्रता आ सकती है. अतः अगर आप जैव झिल्लियों की कार्य प्रणाली का सम्यक अध्ययन करना चाहते हैं तो आप को गणितीय परिकल्पनाओं का सहारा लेना पड़ेगा. इस दृष्टि से नये आकार को नाम देना अध्ययन हेतु सुविधाजनक सिद्ध होगा.

इस खोज से सामान्य दशा में या रोगग्रस्त अवस्था में प्राणियों में कोशिकाओं की वृद्धि कैसे होती है, यह समझने में जीव वैज्ञानिकों को बहुत सहायता होगी. अंगों के संरचना विकास एवं ट्यूमर की वृद्धि का अध्ययन पहले की अपेक्षा सरल हो सकेगा. संभव है कैंसर जैसे घातक रोग से मुक्ति पाने की दिशा में भी इस नयी खोज से कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन आ सके. संक्षेप में इस खोज से प्राणियों में संरचना विकास के जैव भौतिकीय कारकों को समझने में उल्लेखनीय सहायता मिल सकेगी.

इस शोध का सर्वाधिक महत्त्व चिकित्सा विज्ञान में है. हम सभी स्कूटाएड आकार की कोशिकाओं से बने हैं. उदाहरण के लिए यदि आप प्रयोगशाला में कृत्रिम अंग का निर्माण कर रहे हैं, तो कोशिकाओं को स्कूटाएड आकार में व्यवस्थित करने से प्रकृति के समान ऊतक का निर्माण करने में भारी सहायता मिलेगी.

विज्ञानियों का मानना है कि अभी तो केवल शुरुआत हुई है. इस खोज के परिणाम दूरगामी होंगे और समय के साथ हम इसे बेहतर तरीके से समझ सकेंगे.

यदि हमें वैश्विक परिवेश में सार्थक सहभाग लेकर अपने राष्ट्रीय जनमानस एवं समाज की समस्या के वास्तविक समाधान निकालने हैं तो हमें उच्च प्रौद्योगिकी का विकासकर उसका युक्त संगत उपयोग करने में अग्रणी रहना होगा.

-डॉ. विक्रम साराभाई

ब्रह्मांड विज्ञान के अन्यतम अध्येताः स्टीफ़न हॉकिंग

मंजुलिका लक्ष्मी
'अनुकम्पा', वाई 2 सी 115/6, त्रिवेणीपुरम,
झूँसी,इलाहाबाद-19

14 मार्च 2018 को विश्वविख्यात भौतिकी विज्ञानी डॉ. स्टीफ़न हॉकिंग के अवसान ने विज्ञान जगत को ब्रह्माण्ड के अनेक गोपनीय रहस्यों का अनावरण करने वाले विश्व के इस सदी के महानतम बौद्धिक विभूति से वंचित कर दिया. ब्रह्माण्ड के अनेक जटिल रहस्यों को सुलझाने वाले स्टीफ़न हॉकिंग ने वर्षों पूर्व मानव समाज के समक्ष एक प्रश्न रखा था-'एक ऐसे विश्व में जो राजनीतिक,सामाजिक और पर्यावरणीय स्तर पर आज पूरी तरह अव्यवस्था की स्थिति में है- मानव जाति भला कैसे अगले सौ वर्षों तक बचे रहने की आशा कर सकती है?' और फिर इस प्रश्न की विडंबना पर चिन्तित भाव से उन्होंने स्वयं उसके उत्तर के रूप में यह भी कहा- 'मुझे इस प्रश्न का उत्तर नहीं मालूम है. परंतु मैं यह प्रश्न इसलिए कर रहा हूँ कि लोग कम से कम इस दिशा में विचार करना तो प्रारंभ करें और आज हम सब के समक्ष जो ख़तरे खड़े हैं, उनसे अवगत हों.' हॉकिंग ने यह व्यथा भी प्रकट की कि धरती पर विद्यमान जीवन निरंतर किसी आकस्मिक आणविक युद्ध के विस्फोट, वैश्विक तापन, आनुवंशिक रूप से अभियन्त्रित विषाणुओं के आक्रमण अथवा ऐसे ही कुछ अन्य खतरों की आशंकाओं के घेरे में है. मानवता के विषय में ऐसी चिन्ताओं के निराकरण के रूप में डॉ. हॉकिंग ने धरती से अलग अन्य रहने योग्य ग्रहों में कॉलोनी बना कर रहने का परामर्श भी दिया. मानवता के भविष्य और सुरक्षा के लिए डॉ. हॉकिंग अंतरिक्ष उड़ानों और नये ग्रहों पर बस्तियों के बसाने को आवश्यक मानते थे. मानव समाज की भावी कठिनाइयों और वेदनाओं के विषय में डॉ. स्टीफ़न हॉकिंग की ऐसी सोच इस बात का द्योतक है कि विज्ञान का अंतिम ध्येय केवल और केवल मानवता का हितचिंतन मात्र है और स्वयं स्टीफ़न महोदय का समस्त

कार्य और विचार मानव समाज के मंगल कामना की दिशा में ही उन्मुख था.

ब्रह्माण्ड के जटिलतम रहस्यों को अत्यन्त सरलता से बोधगम्य बनाने वाले स्टीफ़न हॉकिंग का जन्म 8 जनवरी, 1942 को इंगलैंड के ऑक्सफ़ोर्ड नामक स्थान में हुआ था. यह एक संयोग ही कहा जा सकता है कि उनका यह जन्मदिवस गैलीलियो की मृत्यु की तीन सौवीं वार्षिकी के दिन ही पड़ा. उनके पिता फ्रैंक हॉकिंग और माता आइज़ोबेल हॉकिंग दोनों ने ही आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी और क्रमशः चिकित्सा विज्ञान और दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया था. परिवार में स्टीफ़न के अतिरिक्त उनकी दो छोटी बहनें और एक गोद लिया हुआ भाई था. सन् 1950 में उनके पिता को नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ़ मेडिकल रिसर्च में पैरासाइटॉलाजी विभाग का विभागाध्यक्ष नियुक्त किया गया था. तब पूरा परिवार सेंट एल्बांस के हर्टफ़ोर्डशायर में स्थानान्तरित हो गया. समाज की दृष्टि में यह उच्च शिक्षित परिवार प्रारंभ से कुछ 'अलग' प्रकार का था क्योंकि सामान्य लोगों की तरह भोजन की

मेज़ पर सभी सदस्य आपस में वार्तालाप या हँसी-मज़ाक के बदले चुपचाप अपने आप में खोये हुए पुस्तकें पढ़ते रहते थे.

यह स्टीफ़न हॉकिंग का भी सौभाग्य था कि उन्हें ऐसी बौद्धिक पृष्ठभूमि वाले परिवार में जन्म मिला. उनकी प्रारंभिक शिक्षा हाईगेट, लंदन स्थित 'बायरन हाउस स्कूल' में सम्पन्न हुई. माध्यमिक शिक्षण का 'एलेविन-प्लस' स्तर उत्तीर्ण कर लेने के पश्चात् हॉकिंग के पिता की इच्छा थी कि उनको आगे की शिक्षा के लिए 'वेस्टमिनिस्टर स्कूल' में प्रवेश दिलाएँ परंतु दुर्भाग्यवश तेरह वर्षीय स्टीफ़न उसकी छात्रवृत्ति प्रवेश परीक्षा के दिन ही अस्वस्थ हो गए, अतः परीक्षा न दे सके. इस छात्रवृत्ति के अभाव में उनकी सीमित आर्थिक क्षमताओं वाले परिवार के लिए विवश होकर स्टीफ़न हाकिंग को उसी सेंट एल्बांस के अपने पुराने विद्यालय में ही आगे की पढ़ाई के लिए छोड़ना पड़ा. इसका दूसरा सौभाग्यशाली पक्ष यह रहा कि स्टीफ़न को अपने पूर्व छात्रमित्रों के साथ वायुयान निर्माण, आतिशबाजी और नौकाओं के निर्माण से लेकर ईसाई धर्म तथा अतिसंवेदी प्रत्यक्षीकरण जैसे जटिल विषयों पर भी चर्चाएँ करने के नियमित अवसर मिलते रहे. उस विद्यालय में शिक्षा की अवधि में उनकी एक बड़ी उपलब्धि यह रही कि उन्होंने अपने गणित के प्राध्यापक के साथ मिल कर घड़ी के पुर्जो, टेलीफोन के स्विच बोर्ड तथा अन्य कुछ ऐसे ही मिले जुले पुर्जों से एक कम्प्यूटर बना लेने में सफलता प्राप्त की. इस सबका प्रभाव यह हुआ कि विद्यालय में लोग अब उन्हें 'आइन्स्टीन' के नाम से जानने लगे. यह भी संयोग ही कहा जाएगा कि आइन्स्टीन की ही भाँति स्टीफ़न हॉकिंग को भी शैक्षणिक स्तर पर प्रारंभ में कोई विशेष सफलता नहीं प्राप्त हुई. शनैः शनैः उन्होंने वैज्ञानिक विषयों के प्रति अपनी विशेष रुचि और प्रतिभा दोनों का प्रदर्शन किया. इसमें उनके गणित के अध्यापक डिकरॉन टाहटा महोदय की विशेष प्रेरणा थी. स्टीफ़न के पिता की इच्छा थी कि वे उनकी ही भाँति चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र को अपना लें, क्योंकि एक तो पिता स्वयं उस क्षेत्र से संबंधित थे दूसरे उनकी दृष्टि में गणित के स्नातकों के लिए उस दौर में अच्छी नौकरियों के अवसर बहुत कम थे. अन्ततः स्टीफ़न ने यूनिवर्सिटी कॉलेज, ऑक्सफोर्ड में भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान के अध्ययन के लिए प्रवेश ले लिया क्योंकि उस वर्ष वहाँ गणित विषय उपलब्ध नहीं था. उस समय स्टीफ़न की उम्र मात्र 17 वर्ष की थी और समय था 1959 का अक्टूबर माह.

प्रारंभिक एक डेढ़ वर्ष तक स्टीफ़न को समस्त पाठ्यक्रम बेहद आसान, अतः बहुत नीरस और उबाऊ लग रहा था. उन दिनों की चर्चा करते हुए उनके भौतिक विज्ञान के शिक्षक रॉबर्ट बर्मन ने लिखा है कि स्टीफ़न के लिए केवल यह जानना ही पर्याप्त था कि कोई काम किया जाना संभव है अथवा नहीं? यह जान कर कि वह संभव है स्टीफ़न बिना यह देखे कि दूसरे लोगों ने उसे कैसे किया है, तत्काल उसे स्वयं पूरा कर डालते थे. दो वर्षो के उपरान्त वे अपने विद्यालय में एक अत्यन्त लोकप्रिय, हँसमुख और शास्त्रीय संगीत तथा विज्ञान कथाओं में रुचि लेने वाले चर्चित सदस्य के रूप में विख्यात हो गए. अपनी समापन परीक्षा में स्टीफ़न ने अच्छे अंक प्राप्त किए और अपनी मौखिक परीक्षा में परीक्षकों को अपने उत्तरों से अत्यन्त प्रभावित कर दिया. परीक्षकों को उनसे बात करके यह आभास हो गया कि वे किसी असामान्य मेधा वाले व्यक्ति से साक्षात्कार कर रहे हैं. वहाँ से बी ए ऑनर्स की प्रथम श्रेणी की उपाधि के साथ स्टीफ़न ने 1962 में आगे के अध्ययन के लिए ट्रिनिटी हॉल, कैम्ब्रिज में प्रवेश लिया. यहाँ प्रवेश लेने का स्टीफ़न का उद्देश्य ब्रह्माण्ड विज्ञान के रहस्यों को समझने की दिशा में अग्रसर होना था. परंतु प्रारंभ में ही जब उनको निदेशक के रूप में फ्रेंड़ हॉयल (विख्यात नक्षत्र विज्ञानी) के स्थान पर डेनिस विलियन सियामा के साथ संयुक्त कर दिया गया, तो उन्हें बड़ी निराशा हुई. साथ ही सामान्य सापेक्षता और बह्मांड विज्ञान के अध्ययन के लिए उनका गणित का ज्ञान भी कुछ अपर्याप्त सिद्ध हो रहा था. लगभग यही समय था जब स्टीफ़न को अपने शरीर के मोटर न्यूरॉनों संबंधी अत्यन्त गंभीर और अत्यधिक दुर्लभ रोग 'एमायोट्रॉपिक लैटेरल स्क्लेरॉसिस' के विषय में पता लगा. स्वाभाविक ही था कि हॉकिंग निराशा और अवसाद की गहराइयों में डूब गए. चिकित्सकों ने उन्हें अपना अध्ययन जारी रखने की अनुमति दे दी थी, परन्तु स्टीफ़न के लिए शारीरिक असमर्थता का यह अनपेक्षित आघात अत्यन्त दुखःदायी सिद्ध हुआ था. रोग का यह आक्रमण उनकी सारी महत्वाकांक्षाओं, स्वप्नों और बौद्धिक क्षमताओं के अनन्त विस्तार की परिकल्पनाओं का अन्त था. परन्तु इन समस्त निराशाजनक पक्षों के बीच एक सकारात्मक बात यह हुई कि स्टीफ़न का रोग चिकित्सकों द्वारा पूर्वानुमानित गति की तुलना में बहुत धीमी गति से आगे बढ़ रहा था. यह सांत्वना का विषय होते हुए भी हॉकिंग को अब सामान्य रूप से चलने फिरने के लिए भी सहायता की आवश्यकता पड़ने लगी थी तथा उनकी बोली अब दूसरों की समझ में बहुत कठिनाई से आती थी. जीवन की इन क्रूर विपरीतताओं के मध्य हॉकिंग ने 'उड़ने' की अपनी दुर्लभ जिजीविषा से उन चिकित्सकों को गलत सिद्ध कर दिया जिन्होंने कहा था कि वे केवल दो वर्ष ही और जीवित रह सकेंगे !

उनके कार्यों में उनके निदेशक डेनिस सियामा का प्रोत्साहन बहुत उत्साहवर्धक सिद्ध हुआ और अपनी मेधाशक्ति और व्यक्तित्व की प्रखरता के लिए विख्यात हो रहे हॉकिंग ने 1964 में दिए गए अपने एक भाषण द्वारा प्रसिद्ध खगोलविद् फ्रेड हॉयल तथा उनके शिष्य जयन्त नार्लीकर के कार्यों तक को चुनौती दे डाली. अगले ही वर्ष 1965 में हॉकिंग ने कृष्ण विवर के केन्द्र में रॉजर पेनरोज़ द्वारा प्रतिपादित 'थ्योरम ऑफ़ स्पेसटाइम सिंगुलैरिटी' के सिद्धान्त को संपूर्ण ब्रह्मांड के जन्म पर स्थापित करता हुआ अपना एक क्रान्तिकारी शोध निबन्ध लिखा जिसे विश्वविद्यालय द्वारा 1966 में स्वीकृति भी प्रदान कर दी गई. उसके आधार पर हॉकिंग को कैम्ब्रिज के गॉनबिल और केयस कॉलेज में कार्य करने के लिए एक शोधवृत्ति प्राप्त हुई. मार्च 1966 में ही हॉकिंग को सामान्य सापेक्षता और ब्रह्मांड विज्ञान में विशेष संदर्भों के साथ सैद्धान्तिक भौतिकी एवं अनुप्रयुक्त गणित विषय पर पीएचडी की उपाधि प्रदान की गई. उनके द्वारा लिखे गए शोध निबंध 'सिंगुलैरिटीज़ एण्ड द ज्योमेट्री ऑफ़ स्पेस-टाइम' को उस वर्ष के एडम पुरस्कार से सम्मानित किया गया. यह पुरस्कार उस वर्ष दो लोगों को संयुक्त रूप से दिया गया था और वह दूसरे व्यक्ति और कोई नहीं स्वयं रॉजर पेनरोज़ थे जो आगे चलकर हॉकिंग के शोध कार्यों के सहयोगी शोधकर्ता बने.

हॉकिंग अब अपने एकात्मता (सिंगुलैरिटी) के सिद्धान्त की अवधारणा को आगे बढ़ाने तथा उसमें अन्य नवीन संभावनाएँ खोजने में कार्यरत हो गए. 1970 में पेनरोज़ तथा हॉकिंग का एक संयुक्त शोध निबंध प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि यदि ब्रह्मांड सामान्य सापेक्षता के सिद्धान्त का अनुसरण करता है और भौतिकीय ब्रह्माण्ड विज्ञान के उन नियमों पर सिद्ध होता है जो एलेक्जेंड़र फ्रीडमैन द्वारा विकसित किए गए थे, तो इसका उद्भव एक एकात्मक रूप में ही हुआ होगा.

1970 में हॉकिंग ने अपने उस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे आज हम कृष्ण विवर गतिकी का द्वितीय नियम (सेकेंड लॉ ऑफ़ ब्लैक होल डाइनेमिक्स) के नाम से जानते हैं. उन्होंने जेम्स एम.बॉरडीन तथा ब्रैन्डन कार्टर के साथ मिल कर 'कृष्ण विवर यांत्रिकी' के चार नियमों की स्थापना की. जनवरी 1971 में उनके 'कृष्ण विवर' शीर्षक निबंध को 'ग्रैविटी रिसर्च फाउण्डेशन' की ओर से पुरस्कृत किया गया. इसी के दो वर्ष बाद 1973 में जॉर्ज एलिस के साथ संयुक्त रूप से लिखी गई उनकी प्रथम पुस्तक 'द लार्ज स्केल स्ट्रक्चर ऑफ स्पेस टाइम' भी प्रकाशित हुई. अब हॉकिंग धीरे धीरे क्वांटम ग्रेविटी और क्वांटम मेकेनिक्स की गूढ़ताओं के अध्ययन की ओर प्रवृत्त हो रहे थे. लगभग इसी समय मॉस्को के भ्रमण और वहाँ याकोव बोरिसोविच जेल्ड़ोविच तथा अलेक्सेइ स्टारोबिन्स्की नामक वैज्ञानिकद्वय से मिलने के पश्चात् इस दिशा में उनके कार्यों ने तीव्रता पकड़ ली. इन्हीं वैज्ञानिकों के कार्यों से हॉकिंग इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि 'अनिश्चितता के सिद्धान्त' के अनुसार घूर्णनशील कृष्ण विवर सूक्ष्म कणों को उत्सर्जित करते हैं. हॉकिंग के अपने ही नये अध्ययन उनके पूर्वोलिखित 'दूसरे नियम' का विरोध कर रहे थे. 1974 के बाद हॉकिंग द्वारा प्रस्तुत किए जा रहे शोध अध्ययनों से यह सिद्ध हो रहा था कि कृष्ण विवर विकिरण उत्सर्जित करते हैं, जिस सिद्धान्त को आज 'हॉकिंग रेडियेशन' के नाम से जाना जाता है. यह विकिरण तब तक चलता रहता है जब तक उन कृष्ण विवरों की ऊर्जा समाप्त नहीं हो जाती और वे विलीन नहीं हो जाते. प्रारंभ में इस सिद्धांत पर बहुत मतभेद थे, किंतु अध्ययनों की गहराई में जाने पर यह स्पष्ट हो गया कि हॉकिंग की वह घोषणा सैद्धान्तिक भौतिकी के क्षेत्र में एक बहुत क्रान्तिकारी विस्फोट था. फलतः 1974 में हॉकिंग को फ़ेलो ऑफ़ रॉयल सोसाइटी के दुर्लभ सम्मान से अलंकृत किया गया. रॉयल सोसायटी की यह प्रतिष्ठित सदस्यता पाने वाले वे सबसे कम आयु के वैज्ञानिक थे. इससे पूर्व 1970 में ही उन्हें कैलिफ़ोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ़ टेकनॉलॉजी (कैल्टेक) की अति प्रतिष्ठित 'शर्मन फेयरचाइल्ड विज़िटिंग प्रोफेसरशिप' से भी सम्मानित किया जा चुका था. अपने बाद के जीवन में भी हॉकिंग ने कैल्टेक संस्थान से अपने संबंधों को जीवित रखा.

1975 में हॉकिंग पुनः 'गुरुत्वाकर्षण भौतिकी' विभाग में एक रीडर के रूप में कैम्ब्रिज वापस आ गए. 1975 में उन्हें 'एडिंगटन पदक' और 'प्लस XI स्वर्ण पदक' के रूप में दोहरा सम्मान प्रदान किया गया क्योंकि हॉकिंग और कृष्ण विवर दोनों ही सत्तर के दशक में अत्यधिक चर्चित होने लगे थे. सम्मानों के इसी क्रम में 1976 में उन्हें डैनी हीनमैन पुरस्कार,मैक्सवेल पुरस्कार और 1979 में अल्बर्ट आइंस्टीन पदक से सम्मानित किया गया. 1979 में गुरुत्वाकर्षण भौतिकी के विभाग में प्रोफेसर के रूप में नियुक्ति से उनकी मेधा को समुचित सम्मान प्राप्त हुआ. 1979 में यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ़ ऑक्सफ़ोर्ड ने उन्हें डाक्टरेट की मानद उपाधि दी और यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैम्ब्रिज द्वारा 'लूकेसियन प्रोफेसर ऑफ़ मैथमेटिक्स' का दुर्लभ गौरव भी मिला. इस अवसर पर उन्होंने "इज़ द एण्ड इन साइट फ़ॉर थ्योरिटिकल फ़िजिक्स' नामक अपने एक महत्वपूर्ण भाषण से वैज्ञानिक जगत को अचम्भित कर दिया. इसी भाषण में उन्होंने सुपरग्रेविटी के महत्वपूर्ण सिद्धान्त को भौतिकी के क्षेत्र के अनेक रहस्यों

और अनुत्तरित जटिलताओं को सुलझाने की कारगर चाभी के रूप में प्रस्तुत किया.

भौतिकी के प्रति उनके दृष्टिकोण में धीरे धीरे एक निश्चित परिवर्तन का प्रारंभ हो चुका था. अब वे गणितीय साक्ष्यों की अपेक्षा अंतर से स्फुरित होने वाली चेतना और चिंतनजन्य अनुमानों को अधिक महत्व देने लगे थे. 1981 में उन्होंने यह धारणा व्यक्त की एक बार कृष्ण विवर के विलीन हो जाने पर उसमें निहित किसी भी प्रकार की सूचनाएँ पुनः किसी प्रकार नहीं प्राप्त की जा सकतीं. इस वैज्ञानिक अवधारणा ने वर्षों तक उन्हें लियोनॉर्ड ससकिंड और जेराई टी. हूफ़्ट नामक वैज्ञानिकों के साथ 'कृष्ण विवर युद्ध' में अटकाए रखा.

ब्रह्मांड के उद्भव के प्रश्न पर उन्होंने क्वांटम थ्योरी रिसर्च को एक नई दिशा दी. 1981 में वैटिकन सिटी के एक सम्मेलन में उन्होंने एक शोधपत्र प्रस्तुत किया जिसमें यह विचार प्रकाशित किया कि ब्रह्मांड का कोई न आदि है और न अंत. उनका विचार था कि स्थान और काल के संबंध में ब्रह्मांड की कोई भी सीमा नहीं है. अपनी पुस्तक 'ए ब्रीफ़ हिस्ट्री ऑफ़ टाइम' में उन्होंने लिखा- ''यदि हम एक समग्रतापूर्ण सिद्धान्त ढूँढ लेते हैं, तो यह मानवीय क्षमताओं की विजय होगी. और तब हम 'ईश्वर के मस्तिष्क' की कार्यप्रणाली को कुछ समझ सकेंगे. अर्थात् वे ईश्वर की सत्ता से निर्पेक्ष भले ही रहे हों उसे पूर्णतया अस्वीकार नहीं कर रहे थे. उसी पुस्तक में उन्होंने यह भी विचार प्रकट किया था कि ब्रह्मांड की उत्पत्ति का रहस्य समझने के लिए ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करना आवश्यक नहीं है. आगे चल कर हॉकिंग ने काल और उसके पीछे जाने की प्रक्रिया के विषय में अपने कुछ क्रान्तिकारी विचार प्रकट किए, परन्तु अन्य वैज्ञानिकों के विरोध पर उन्हें अपनी अवधारणाएँ वापस लेनी पड़ीं.

उनकी यह शोधपूर्ण वैज्ञानिक यात्रा निरंतर उनके लिए पुरस्कारों और सम्मानों की झड़ी लगा रही थी. 1981 में अमेरिका का फ्रैंकलिन पदक और 1982 में इंग्लैंड का 'कमांडर ऑफ़ द ऑर्डर ऑफ़ द ब्रिटिश एम्पायर' सम्मान उसी क्रम की कुछ कड़ियाँ हैं. कहा जाता है कि अपने बच्चों की शिक्षा के लिए कुछ अतिरिक्त धनार्जन की दृष्टि से ही हॉकिंग ने सामान्य जन को भी समझ में आने वाली पुस्तक 'ए ब्रीफ़ हिस्ट्री ऑफ़ टाइम' लिखी थी. पुस्तक का प्रथम प्रारूप 1984 में ही तैयार हो गया था, पर प्रकाशकों द्वारा निरंतर उसकी भाषा और अवधारणाओं के सरलीकरण पर बल दिए जाने और उसमें संशोधन के कारण अन्ततः पुस्तक 1988 में प्रथम बार प्रकाशित हो सकी. इस सरलीकरण का ही परिणाम था कि पुस्तक को तत्काल अपार लोकप्रियता और सफलता प्राप्त हुई जबकि स्वयं हॉकिंग महोदय उसके सरलीकरण पर बल दिए जाने की बात से अत्यन्त चिढ़े हुए थे. अनेक भाषाओं में अनुवादित होने वाली इस पुस्तक की 9 मिलियन से अधिक प्रतियाँ बिक चुकी हैं. पुस्तक की सफलता ने उन्हें पूरे विश्व में पहचान और प्रसिद्धि दिलाई और उसका अनुकरण करते हुए आया सम्मानों का क्रम और आर्थिक लाभ. इन सम्मानों में पाँच अन्य मानद उपाधियाँ- रॉयल एस्ट्रॉनॉमिकल सोसाइटी का स्वर्ण पदक, पॉल डिरैक पदक, वूल्फ़ पुरस्कार और 'कंपेनियन ऑफ़ ऑनर', प्रमुख हैं. कहा जाता है कि स्टीफेन हॉकिंग ने नाइटहुड से अलंकृत किए जाने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था.

1993 में हॉकिंग ने गैरी गिब्बन्स के साथ संयुक्त रूप से 'यूक्लिडियन क्वांटम ग्रैविटी' नामक पुस्तक का सहसंपादन किया. उनकी पुस्तक 'ए ब्रीफ़ हिस्ट्री ऑफ टाइम' पर बनी फिल्म ने विज्ञान के प्रति कौतूहल को एक विस्तृत जिज्ञासु जनसमूह तक पहुँचाने का उल्लेखनीय कार्य किया. 'विज्ञान' की उपलब्धता और बोधगम्यता की सीमाओं को अधिकाधिक विस्तृत करने के लिए हॉकिंग ने कृष्ण विवर तथा 'बिग बैंग' सिद्धान्त पर अपने लिखे हुए लेखों का संकलन भी प्रकाशित करवाया. पुनः अपने सिद्धान्तों को अधिकाधिक लोगों तक पहुँचाने के लिए हॉकिंग ने एक अन्य पुस्तक 'ए ब्रीफ़र हिस्ट्री ऑफ़ टाइम' (2005) और 'द यूनिवर्स इन ए नटशेल' (2001) प्रकाशित करवाई. उनके शोध और चिंतन के नवीनतम प्रत्ययों को प्रदर्शित करनेवाली उनकी एक अन्य पुस्तक 'गॉड क्रिएटेड इन्टीजर्स' 2006 में प्रकाशित हुई.

अपनी विकलांगता के साथ भी हॉकिंग विश्व के अनेक देशों का दौरा करते रहते थे, जिनमें यू एस ए की बारंबार की यात्राओं के अतिरिक्त कनाडा,चिली,साउथ अफ्रीका और स्पेन आदि देश भी शामिल हैं. स्पेन की उनकी यात्रा तो 2008 में फ़ोनेस्का पुरस्कार प्राप्त करने के लिए की गई थी. अपनी व्यक्तिगत कठिनाइयों के कारण हॉकिंग अधिकाधिक यात्राएँ प्राइवेट जेट द्वारा ही किया करते थे. अपनी विलक्षण बौद्धिक प्रतिभा और उसकी गरिमा के अनुरूप ही अपना मत बदलने पर स्टीफ़न हॉकिंग ने 2014 में यह घोषणा की कि कृष्ण विवरों में सूचनाओं के विनष्ट हो जाने का उनका वैचारिक प्रत्यय उनके जीवन की सबसे बड़ी भूल थी. उनमें यह उदारता और गरिमा भी थी कि जब जुलाई 2012 में 'गॉड पार्टिकिल' 'ढूँढ' लिया गया, तो अपनी पूर्व शर्त के अनुसार उन्होंने अपनी हार मान ली और यह कहा कि पीटर हिग्स भौतिकी के नोबेल पुरस्कार के सबसे योग्य अधिकारी हैं. हॉकिंग में यह लालसा बहुत तीव्र थी कि वह अपने सिद्धान्तों और विचारों को सरल रूप में अधिक से अधिक लोगों तक

पहुँचा कर समाज को एक नई वैचारिक दृष्टि दे सकें अतः भौतिकी के सिद्धान्तों को अधिकाधिक बोधगम्य बनाने की चेष्टा में 2007 में उनकी पुत्री लूसी हॉकिंग के साथ एक पुस्तक लिखी गई 'जार्जेस सीक्रेट की टु यूनिवर्स'. यह पुस्तक मुख्यतः बच्चों के लिए थी. इस पुस्तक के परवर्ती भाग भी 2009, 2011 और 2014 में प्रकाशित हुए.

2009 में हॉकिंग ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से 'लूकेसियन प्रोफ़ेसर' की पीठ से अवकाश प्राप्त किया. लोगों को यह आशंका थी कि सरकार द्वारा मूलभूत वैज्ञानिक शोधों के लिए अनुदान कम करने के विरोध में हॉकिंग शायद इंग्लैंड छोड़ कर अन्यत्र न चले जाएँ, परन्तु हॉकिंग बाद के दिनों में भी कैंब्रिज विश्वविद्यालय के अनुप्रयुक्त गणित और सैद्धान्तिक भौतिकी विभाग में शोध निदेशक के रूप में कार्य करते रहे. उन्होंने अपने समय में 39 विद्यार्थियों का शोध निर्देशन किया. 'ब्रेकथ्रू इनिशियेटिव्स' नामक एक योजना के संचालन में भी उनका सहयोग बहुत महत्वपूर्ण रहा जिसका मुख्य उद्देश्य पृथ्वी से इतर जीवन की खोज का प्रयास करना था. यह एक विरोधाभास ही कहा जाएगा कि इंपीरियल कॉलेज, लंदन की ओर से उनके जीवन के अंतिम समय के निकट 2017 में उन्हें मानद उपाधि से सम्मानित किया गया.

सामान्य मान्यताओं के विपरीत विकलांगता में भी हॉकिंग का दांपत्य जीवन बहुत प्रसन्नता भरा और मानसिक संतुष्टि से युक्त था. उनका प्रथम विवाह 1965 में उनके साथ पढ़ने वाली मित्र जेन वाइल्ड से हुआ था जिसने हाकिंग की शारीरिक न्यूनताओं को जानते हुए भी उनसे विवाह किया था. अपने वैवाहिक जीवन के प्रारंभिक वर्षों में वे अपने कार्य के संबंध में और शोध संगोष्ठियों के लिए साथ साथ यात्राएँ कर रहे थे. इस विवाह से हॉकिंग और जेन को राबर्ट (1967), लूसी (1970) और टिमॉथी (1979) नामक तीन संतानों की प्राप्ति हुई. यह दंपत्ति आपस में शायद ही कभी हॉकिंग की विकलांगता या विवशता के संबंध में चर्चा करते थे परन्तु इसका एक अर्थ यह भी था कि पारिवारिक उत्तरदायित्वों का अधिकाधिक भार जेन पर आ रहा था और उसी के परिणामस्वरूप हॉकिंग को अपने शोध और चिंतन के लिए अधिक समय प्राप्त हो रहा था. व्यवहारिक कठिनाइयों से निपटने के लिए अब इस दंपत्ति ने एक शोध विद्यार्थी को अपने परिवार के सदस्य की भाँति साथ रखने का मार्ग निकाला. इसमें सर्वप्रथम सहायक बने बर्नार्ड कार. 1980 के दशक में कतिपय कारणों से इस दंपत्ति के मध्य दरारें विकसित होने लगीं जिसका एक कारण जेन का ईसाई धर्म में गहरी आस्था और हॉकिंग का धर्म के प्रति कुछ निर्पेक्ष उदासीन भाव भी था. 1995 में हॉकिंग ने जेन से विदा ले ली और उनके मध्य तलाक हो गया. जेन ने 1999 में स्टीफेन के साथ अपने दाम्पत्य के विषय में अनेक विवादास्पद वर्णनों से युक्त एक पुस्तक प्रकाशित कराई जिसका नाम था 'म्यूज़िक टु मूव द स्टार्स'.

दांपत्य जीवन के तनाव भरे दिनों में हॉकिंग अपनी ही एक नर्स ईलेन मेसन के प्रति आकर्षित होने लगे थे. जेन से संबंध विच्छेद के बाद शीघ्र ही दोनों ने विवाह कर लिया और हॉकिंग ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए घोषणा की 'यह अत्यधिक रोमांचक अनुभूति है. मैं उस स्त्री से विवाह कर सका हूँ जिसे मैं प्यार करता हूँ.' दुर्भाग्य से दूसरे विवाह का यह दांपत्य जीवन हॉकिंग के लिए बहुत सुखद नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इस वैवाहिक संबंध ने हॉकिंग के परिवार के अन्यान्य सदस्यों को उनसे बिल्कुल दूर कर दिया. विवाह के पूर्व भी उनका परिवार इलेन मेसन के व्यक्तित्व की अत्यधिक नियंत्रणकारी और प्रभुत्वपूर्ण प्रवृत्तियों से किंचित आशंकित था. उनका यह डर कहीं न कहीं सच साबित हुआ क्योंकि, उन दोनों के मध्य मतभेदों के विषय में अंततः पुलिस द्वारा पूछताछ तक की नौबत आई परंतु कुछ भी

साबित नहीं हो सका क्योंकि हॉकिंग ने अपनी तरफ से कभी कोई शिकायत नहीं की. अंत में 2006 में यह संबंध विवाह विच्छेद के साथ समाप्त हो गया. इस विच्छेद के पश्चात् हॉकिंग पुनः अपनी प्रथम पत्नी जेन और अपने बच्चों तथा पौत्र पौत्रियों के निकट आने लगे. इसका सुखद पक्ष यह रहा कि जेन ने स्टीफ़न हॉकिंग के साथ अपने जीवन के विषय में पूर्व में जो पुस्तक लिखी थी उसके अंशों का पुनर्लेखन करके अपनी पुरानी यादों की कड़वाहट को उस पुस्तक से दूर कर दिया और उसे नया नाम दिया- ट्रैवेलिंग टु इनफ़िनिटीः माई लाइफ़ विद स्टीफ़न (2007).

यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि स्टीफ़न हॉकिंग अपनी बौद्धिक महानता में अल्बर्ट आइंस्टीन से तनिक भी पीछे नहीं हैं. ब्रह्मांड के विषय में अपने बुनियादी सिद्धान्तों को उन्होंने दो भागों में तो प्रस्तुत किया ही बिग बैंग के सिद्धान्त को प्रथम बार में अपनी मान्यता देने के पश्चात् स्वयं कुछ वर्षों बाद उन्होंने उसमें संशोधन किए और उसे काल की भाँति आदि-अन्तहीन बताया. इस सिद्धान्त की परिपुष्टि के लिए उन्होंने आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धान्त में भी कुछ परिवर्तनों की आवश्यकता की संस्तुति की.

हॉकिंग का सबसे महत्वपूर्ण कार्य कृष्ण विवरों के स्वरूप पर है. भौतिक विज्ञान अब तक यह मानता आया था कि कृष्ण विवर रहस्यमय अनन्त विवर स्थान वाली ऐसी संरचनाएँ हैं जिनमें से कुछ भी बाहर निकलना संभव नहीं है. लेकिन हॉकिंग के शोधों ने भौतिक विज्ञान की इस शास्त्रीय मान्यता को गलत सिद्ध कर दिया. इसके प्रतिपादन के लिए उन्होंने क्वांटम सिद्धान्तों का सहारा लिया तथा यह बताया कि ब्लैक होल से ऊष्मा बाहर विसर्जित होती है और इसी प्रक्रिया में वे शनैः शनैः समाप्त हो जाते हैं. स्टीफ़न हॉकिंग जितना अपनी शोधों की अद्भुत नवीनता के लिए सुप्रसिद्ध थे, उतना ही जीवन के अन्य पक्षों पर प्रस्तुत की गई अपनी चमत्कारी टिप्पणियाँ के लिए भी. संपूर्ण विश्व का सामान्य जन-समाज जहाँ धर्म की सर्वव्यापकता से आक्रान्त है वहाँ हॉकिन्स बड़ी सहजता और दृढ़ता से विज्ञान को धर्म के ऊपर रखते हैं तथा विज्ञान को धर्म से अधिक शक्तिशाली, प्रभावपूर्ण और सफल बताते हैं. उनका कहना था कि धर्म शासन की तरह अपनी सत्ता के जोर पर प्रभाव जमाना चाहता है, जबकि विज्ञान अपनी तर्कशीलता के कारण सहज ही ग्राह्य और मान्य होता है. अतः उन्हें न तो ईश्वर के अस्तित्व में आस्था थी और न मृत्योपरांत किसी स्वर्ग की कल्पना ही उन्हें लुभाती थीं. 2014 में एक सार्वजनिक बयान से उन्होंने स्वयं को नास्तिक घोषित कर दिया था. तथापि स्वर्ग की कल्पना पर आस्था न रखने वाले हॉकिंग एलियंस (अन्य ग्रहों के काल्पनिक जीव) की संभावना को पूर्णतया नकारते नहीं थे, क्योंकि उनके अनुसार ब्रह्माण्ड की अंतहीन विशालता के आगे परग्रहवासियों के अस्तित्व की संभावना को नकारना दुस्साहस ही हो सकता है. वे यह भी कहते थे कि एलियंस से संपर्क स्थापित करने के प्रयास का अर्थ है, उन्हें अपनी धरती के संसाधनों पर अधिकार जमाने का आमंत्रण देना !

स्टीफ़न हॉकिंग एक प्रखर बौद्धिक चेतना वाले वैज्ञानिक के साथ-साथ एक सामान्य जागरूक नागरिक के रूप में समस्त विश्व में व्याप्त जलवायु परिवर्तन की विभीषिका के प्रति भी चिंतित और आशंकित थे. एक अनुमान के तहत उनका कहना था कि जलवायु परिवर्तन की वर्तमान गति के अनुरूप सन् 2600 तक हमारी पृथ्वी आग के गोले की तरह तपने लगेगी और वह समय अब अधिक दूर नहीं है. अतः मानव समाज के लिए उचित होगा कि अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए दूसरे ग्रहों पर उपनिवेश बना कर बसने की प्रक्रिया शीघ्र ही प्रारंभ कर दे.

वस्तुतः स्टीफ़न हॉकिंग की विलक्षणता जितनी उनके शोध कार्यों से सिद्ध होती है उतनी ही इस तथ्य से भी कि उन्होंने सही अर्थों में अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति और अमर्त्य जिजीविषा के बल पर मृत्यु को भी पीछे छोड़ दिया. जिस व्यक्ति को चिकित्सकों ने केवल 2 वर्षों के जीवन की आशा प्रदान की थी उसने अपने कार्य के प्रति अपने अगाध समर्पण से मृत्यु को भी धता बता दी और 76 वर्षों की परिपक्व आयु जी कर विदा ली. एक पूर्णतः विकलांग शरीर के साथ भी वे भरपूर जिए. उनकी सबसे बड़ी सफलता इस तथ्य में निहित है कि अपनी शारीरिक असमर्थताओं के साथ भी उन्होंने वह कर दिखाया जो वह करना चाहते थे. अपना अधिकांश जीवन उन्होंने व्हील चेयर पर बिताया. बोलने से बिल्कुल विवश हॉकिंग को वार्तालाप के लिए स्पीच सिंथेसाइज़र अथवा अपनी भ्रू भंगिमाओं अथवा एकाधिक हिल सकने वाली उँगलियों के संकेतों की सहायता लेनी पड़ती थी.

यह चिकित्सा विज्ञान के लिए भी एक रहस्य या चमत्कार ही है कि कैसे इस प्रकार के एक क्षयकारक रोग से ग्रस्त होने के बाद भी उनकी बुद्धि की तीक्ष्णता बजाय घटने के और बढ़ती ही रही. संभवतः इस जिजीविषा का रहस्य उनकी उस सोच में था, कि जीवन कितना भी बुरा संघर्षमय या चुनौतीभरा क्यों न हो उसमें कुछ न कुछ ऐसे सकारात्मक पक्ष अवश्य छिपे होते है, जो आपको सफलता प्रदान कर सकते हैं और जीना-हँसना सिखा सकते हैं. उनसे उनके रोग के संबंध में प्रश्न करने पर उनका उत्तर सदैव यही होता था कि मैं इस दिशा में अधिक ध्यान न देकर सामान्य जीवन

बिताने का प्रयत्न करता हूँ. उनका जीवन के प्रति सहज लगाव इतना दृढ़ था कि वे अपनी असमर्थताओं में भी हास्य के अवसर ढूँढ़ लिया करते थे.

यह भारत का सौभाग्य था कि 2001 जनवरी में उन्होंने अपनी गरिमामयी उपस्थिति से इस देश को भी गौरवान्वित किया. उनका यह 16 दिवसीय दौरा उनकी भी दृष्टि में अत्यन्त तृप्तिदायक रहा. यहाँ के लोगों से मिल कर और संस्थानों का निरीक्षण करके उनकी भारतीयों के विषय में एक बहुत सम्मानजनक धारणा बनी कि वे गणित और भौतिकी के क्षेत्र में अत्यन्त प्रतिभाशाली हैं. स्टीफ़न हॉकिंग के साथ हुई 45 मिनट की मुलाकात के पश्चात् तत्कालीन भारत के राष्ट्रपति के आर नारायणन ने उनका जो आकलन किया वह अविस्मरणीय है. उन्होंने कहा-'संसार के सभी विकलांग लोगों के समक्ष स्टीफ़न हॉकिंग का जीवन मानवीय आशा एवं प्रेरणा का ज्वलंत प्रतीक है.' कृत्रिम बुद्धिमत्ता के ख़तरों को समझते हुए हॉकिंग ने पहले ही यह चेतावनी दी कि यह मानव के हाथों में जितनी बड़ी शक्ति है उतना ही बड़ा खतरा भी. वे इस संभावना से आशंकित थे कि 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता' अथवा आर्टिफिशल इंटेलिजेंस मार्गच्युत होकर एक बड़ी विपत्ति बन सकती है.

उनकी वैचारिक प्रक्रिया कितनी अलग और आश्चर्यजनक थी इसका एक आभास इस बात से मिलता है कि वे कम्प्यूटर के वाइरसों को भी 'जीवन का एक नया रूप' ए न्यू लाइफ़ फ़ॉर्म मानने पर बल दे रहे थे और मानवीय बुद्धि की नकारात्मकता पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा कि मानव जाति ने 'एक ही तो जीव रूप विकसित किया' और वह भी विध्वंसात्मक.

विज्ञान और दर्शन की तुलना में वे विज्ञान को निश्चय ही श्रेष्ठतर मानते थे, क्योंकि उनका मानना था कि दर्शनशास्त्र समय के साथ कदम मिला कर नहीं चल सका और आधुनिक विज्ञान की अवधारणाओं के अनुरूप उसका विकास नहीं हो सका. अतः वह मृत है.

अपनी राजनीतिक मान्यताओं में हॉकिंग आजीवन इंग्लैंड की लेबर पार्टी के समर्थक थे. राजनीतिक मान्यताओं में दृढ़ रहते हुए भी उन्होंने 2003 में ईराक पर हमले को अपराध कहा तथा आणविक निःशस्त्रीकरण के दृढ़ पक्षधर बने रहे. वे जलवायु परिवर्तन की सर्वत्र व्याप्त हो रही आगामी वर्षों की विभीषिका के प्रति भी बेहद आशंकित थे.

1960 से जब हॉकिंग की शारीरिक क्षमताएँ तीव्रता से घटने लगीं तो पहले तो उन्हें वैसाखियों का सहारा लेना पड़ा. पर अपने मस्तिष्क की तीक्ष्ण प्रखरता के कारण वे अत्यन्त स्वतंत्र स्वभाव के व्यक्ति थे और दूसरों से सहायता लेना बिल्कुल नहीं पसंद करते थे. वे चाहते थे कि समाज में अन्य लोगों की तरह उन्हें उनकी वैज्ञानिक क्षमताओं और लेखन प्रतिभा के साथ साथ अन्य सामान्य मानवों जैसी संवेदनाओं और उद्वेगों से युक्त व्यक्ति के रूप में ही पहचाना जाए. कुछ लोगों की दृष्टि में उनके स्वभाव की इस अत्यधिक स्वनिर्भरता का आग्रह उनकी दृढ़ संकल्पशक्ति के कारण था पर कुछ अन्य लोग इसे केवल उनकी ज़िद की संज्ञा देते थे. इसी का परिणाम था कि उनका अधिकांश जीवन यंत्रों की सहायता और उनके अपने शरीर की कुछ भावभंगिमाओं द्वारा संवाद संचालन के मध्य संतुलन करते हुए बीता. उल्लेखनीय यह है कि वे अपनी विवशता और असमर्थताओं के मध्य भी अजेय और स्वतंत्रचेता बने रहे. कोई भी विकलांगता उनसे न उनकी अपार बौद्धिक समृद्धि को छीन सकी न अपनी क्रूरता के समक्ष झुका ही सकी. बीबीसी को दिए गए अपने एक साक्षात्कार में हॉकिंग ने यह रहस्य खोला कि उनके जीवन की सबसे बड़ी अधूरी रहने वाली इच्छा थी अंतरिक्ष की यात्रा. उनकी इच्छा की पूर्ति के लिए उन्हें एक विशेष रूप से संशोधित बोइंग 727-200 में भारहीनता के अनुभव के लिए उड़ने का अवसर भी दिया गया. उस उड़ान को सफल कहा गया और स्टीफ़न को कोई अतिरिक्त कठिनाई नहीं हुई. पर उनकी मृत्यु तक अंतरिक्ष के लिए व्यवसायिक उड़ानों के न प्रारंभ होने के कारण स्टीफेन की यह इच्छा पूर्ण न हो सकी.

इस अत्यंत सफल और प्रखर बौद्धिक चेतना से युक्त जीवन का समापन उनके कैम्ब्रिज स्थित निवास पर 14 मार्च 2018, बुधवार की प्रातः हो गया. उनके इस अवसान पर उनके बच्चों ने अपनी प्रतिक्रिया इन शब्दों में व्यक्त की- "वे एक अत्यन्त महान वैज्ञानिक और एक असाधारण मानव थे जिनका वैज्ञानिक कार्य और विरासत लंबे समय तक संसार में याद रखा जाने वाला है."

अपनी क्रान्तिकारी स्थापनाओं और ब्रह्मांड के रहस्यों पर से पर्दा हटाने के अनेक अभूतपूर्व प्रयासों के बावजूद स्टीफ़न हॉकिंग का नाम कभी विश्व के श्रेष्ठतम नोबेल पुरस्कार के लिए नहीं चयनित हो सका. उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उनके सिद्धान्तों को सिद्ध करने के लिए अनुभवजन्य साक्ष्य प्रस्तुत किया जाना अभी तक संभव नहीं हो सका है. विज्ञान की सर्वशक्तिमयी सत्ता के समक्ष भविष्य में किसी दिन ऐसा संभव होना कठिन भी नहीं है. (गॉड पार्टिकिल को सिद्ध करने का प्रयास इसका उदाहरण है.) विज्ञान जगत को सदैव यह दुःख रहेगा कि नोबेल पुरस्कार द्वारा स्टीफ़न हॉकिंग की अति विलक्षण मेधा का उत्सव मनाना उनके जीवन काल में संभव नहीं हुआ.

कविता

विज्ञान का एक क्षेत्र - सूक्ष्मदर्शी

प्रवीण तँवर
आईडी नंबर 4663, तकनीकी अधिकारी, सीएसआईआर-राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला

आओ दोस्तों आओ साथियों आज आप सभी को
सूक्ष्मदर्शी क्षेत्र की सैर कराता हूं,
तकनीक है ट्रांसमिशन इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप नाम के
उपकरणों से सभी को अवगत कराता हूं.

पहले जानों काम काज इसका और
क्या क्या करतब ये कर सकता है,
छिपे राज और तत्वों के गुण विशेष को
किस तरह हम सबके समक्ष ला सकता है.

प्रमुख पहला काम है इसका अति सूक्ष्म संरचना को
बड़ा करके विभेदन को दिखलाना,
दूजा काम है इसका पदार्थ की गुण विशेषता को
अन्य सभी स्वभाव प्रकृति से मिलान करवाना.

ढूंढता है ये क्रिस्टल के स्वरूप को और dislocation व
grain boundaries की जटिल संरचना को,
जांचे semiconductor की तनु परत त्रुटि व संयोजन के
अध्ययन को और करे रासायनिक विश्लेषण को.

उच्च विभेदन क्षमता से इसकी पदार्थ की उत्कृष्टता आकार बनावट व
quantum well, wire और dot के घनत्व को भी जांचा परखा जाता है,
यही नहीं बल्कि biomedical के क्षेत्र में अति सूक्ष्म कोशिकाओं, blood cells और
DNA टेस्ट के माध्यम से अनसुलझे रहस्यों को भी सामने लाया जाता है.

असली जानकार कहलाए वो व्यक्ति जो इसके
नमूने बनाने के तरीकों को जाने पहचाने,
काम धैर्य का है ये बहुत जो खुद के हाथों से
करे वही इसकी जटिलता के मर्म को माने.

3 मिलिमीटर की copper ग्रिड या cross sectional को होल्डर में
फंसाकर TEM के column में इसे नमूने सहित घुसाया जाता है,
कुछ देर के संचालन से electron किरण समूह जब पड़े ग्रिड वाले नमूने पर
तब इसकी कार्य प्रणाली से सारा भेद स्वयं ही खुल जाता है.

काम होता है कैसे ये सब यह जानना भी
तो हम सबके लिए बहुत जरूरी है,
धैर्य बनाकर रखो दोस्तों इसकी वैज्ञानिक
कार्य प्रणाली को भी समझना बहुत जरूरी है.

दो सौ (200) किलो इलेक्ट्रॉन वॉल्ट potential के जरिए
Electron beam निकले
जब FEG या फिर LaB6 वाले उदगम से,
पहले condenser lens पर पहुंचकर Electrons को
सकेंद्रित करके किरण समूह को अधिक सशक्त किया है.

बढ़े clectron किरण समूह जब और आगे,
तब दूसरे condenser lens के माध्यम से,
अत्यधिक केन्द्रित करके Electrons को,
aperture से गुजारकर नमूने पर गिराया जाता है.

बीचों बीच सूक्ष्मदर्शी के column में copper ग्रिड
पर नमूना खुद को जमाये रहता है,
Electrons की किरणों द्वारा objective lens
के माध्यम से नमूने की प्रतिछाया को बनाया जाता है.

तीसरा lens भी है अति प्रभावी intermediate
लेंस के नाम से जाना जाता है,
काम है इसका अति विशेष आने वाली
प्रतिछाया को बड़ा बनाता जाता है.

प्रतिकृति बनी जो अब तक दृश्यमान हो कर
Projector लेंस से एक विराट रूप में प्रकट हो जाती है,
अक्स रहता वही जो था पहले जब fluorescent
स्क्रीन से टकराकर प्रतिदीप्ति व्याप्त हो जाती है.

इस प्रकार सूक्ष्मदर्शी से विज्ञान सफल हो जाता है,
जो न दिखे नग्न आँखों से वो अणु स्तर का
पदार्थ भी प्रत्यक्ष हो जाता है.

श्रद्धांजलि

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के कर्मठ सदस्य स्व.राम नरेश शर्मा का 11 सितंबर 2018 को मुंबई में निधन हो गया.स्व.शर्मा जी पिछले एक साल से कैंसर की बीमारी से पीड़ित थे. परिषद में वे 2004 से लेकर 2007 तक कोषाध्यक्ष रहे. साथ ही साथ वे हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद के संगोष्ठीयों और वैज्ञानिक पत्रिका के वितरण में सक्रिय रूप से शामिल रहे. ईश्वर उनकी आत्मा को शांति दे और उनके परिवार वालों को इस दुःख की घड़ी को सहन करने की शक्ति और हिम्मत दे. उनके आकस्मिक निधन पर हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद और वैज्ञानिक परिवार भावभींनी श्रद्धांजलि अर्पित करती है.

- सम्पादन मंडल

विज्ञान समाचार

युरोपा में वैज्ञानिकों की रुचि

बृहस्पति के कई चांदों में से एक युरोपा में वैज्ञानिकों की काफी रुचि रही है. युरोपा मुख्य रूप से सिलिकेट चट्टान से बना है जिस पर बर्फ की परत है. इस पर विशाल भूमिगत महासागर का होना जीवन की आशा जगाता है. हाल ही में अमेरिकी कांग्रेस द्वारा नासा को प्रमुख वित्तीय मदद मिली, ताकि युरोपा की सतह पर रोबोटिक लैंडर (क्लिपर) भेजकर उसके बारे में अधिक जानकारी प्राप्त की जा सके. लेकिन युरोपा पर यान को उतारना इतना आसान भी नहीं है. अध्ययनों से पता चला है कि बर्फ से ढंकी सतह दरारों और उभारों से भरी पड़ी है. नेचर जियोसाइन्सेस में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार इस बर्फीले चट्टानी क्षेत्र में प्रत्येक नुकीला उभार पांच मंजिला इमारत जितना ऊंचा है. इस तरह के शिखर पृथ्वी पर एंडीज पर्वत पर देखने को मिलते हैं. इन्हें पेनिटेन्टस (यानी तपस्वी) कहा जाता है, क्योंकि ये ऐसे लगते हैं जैसे कोई सफेद चादर ओढ़े तपस्या कर रहा हो. इनका वर्णन सबसे पहले डार्विन ने किया था. पेनिटेन्ट्स बर्फीले क्षेत्रों में सूरज द्वारा मूर्तिकला का नमूना है. यहां बर्फ पिघलती नहीं है. बल्कि प्रकाश का निश्चित पैटर्न बर्फ को सीधे वाष्पित करता है, जिसके परिणाम स्वरूप सतह की भिन्नताओं के कारण छोटी नुकीली पहाड़ियां और छायादार घाटियां बनती हैं. ये अंधेरी घाटियां चारों ओर मौजूद रोशन चोटियों की तुलना में अधिक प्रकाश अवशोषित करती हैं, और एक फीडबैकलूप में वाष्पीकरण की प्रक्रिया चलती रहती है. इससे पहले पृथ्वी के अलावा प्लूटो पर पेनिटेन्ट्स देखे जा चुके हैं. युरोपा पर अन्य प्रक्रियाओं के आधार पर की गई गणना से पता चलता है कि बर्फ का वाष्पीकरण विषुवत रेखा में अधिक प्रभावी होगा, और ये शिखर 15 मीटर लंबे और 7-7 मीटर की दूरी पर होंगे. इस तरह की आकृतियों से ग्रह के रडार अवलोकन करने पर भूमध्य रेखा पर ऊर्जा में गिरावट का कारण समझा जा सकता है. लेकिन यूरोपा पर यान उतरना कितना कठिन है ये 2020 के मध्य में किल्पर को भेजने पर ही मालूम चलेगा

सूर्य की रोशनी से उर्जा

सूर्य में नाभिकीय संलयन अभिक्रिया से हाइड्रोजन को हीलियम में बदला. हर सेकंड, सूर्य की कोर के भीतर 50 लाख टन से अधिक पदार्थ ऊर्जा में परिवर्तित हुआ है और न्यूट्रिनो व सौर विकिरण का निर्माण किया है. अमेरिका और स्विटजरलैंड के वैज्ञानिकों ने सूर्य की रोशनी से ईंधन बनाने में सफलता हासिल कर ली है. उन्होंने ऐसी मशीन बनाई है जो सूर्य की रोशनी का इस्तेमाल कर हाइड्रोजन बनाएगी. पौधों की नकल करती है ये मशीन. 1905 में महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटाइन ने $E=MC^2$ बताकर विज्ञान का एक बड़ा रहस्य उजागर कर दिया. उनकी खोज ने बताया कि द्रव्यमान और निर्वात में प्रकाश की गति से कैसे असीमित ऊर्जा पैदा की जा सकती है. इसका जीता जागता उदाहरण सूर्य है. 1945 के दशक में इसी समीकरण के आधार पर परमाणु बम बनाया गया.लेकिन तभी से वैज्ञानिक इस गुत्थी में उलझे रहे कि अगर किसी पदार्थ के द्रव्यमान और प्रकाश से ऊर्जा पैदा की जा सकती है तो फिर ऊर्जा से कोई पदार्थ क्यों नहीं बनाया जा सकता. अब करीब 110 साल बाद वैज्ञानिक ऊर्जा से पदार्थ बनाने के करीब हैं. अमेरिका और स्विटजरलैंड के वैज्ञानिकों ने एक प्रोटोटाइप सोलर डिवाइस तैयार की है. इसमें सिरियम ऑक्साइड की मदद ली जाती है. मशीन के ऊपरी हिस्से में एक शंकु के आकार का बड़ा छेद है, जो सूर्य की किरणों को नीचे के छोटे मुंह की तरफ धकेलने का काम करता है. नीचे एक बेलनाकार चैंबर में सिरियम ऑक्साइड की एक परत चढ़ाई गई है. जिस पर एल्युमिना यानी एल्युमिनियम ऑक्साइड का लेप लगाया गया है. इस चैंबर में कार्बन डाईऑक्साइड और पानी भरा जाता है.सिरियम ऑक्साइड सूर्य की रोशनी से गर्म होने पर ऑक्सीजन छोड़ता है और ठंडा होने पर ऑक्सीजन सोखता है. वैज्ञानिकों के मुताबिक सूर्य की रोशनी पड़ते ही चैंबर में हाइड्रोजन और कार्बन मोनोऑक्साइड बनने लगती है जो सौर ऊर्जा की मदद से वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड को पहले कार्बन मोनोऑक्साइड और फिर द्रव ईंधन H_2 में बदल देती है. इस हाइड्रोजन का इस्तेमाल फ्यूल हाइड्रोजन सेल की तरह कार के ईंधन के रूप में किया जा सकता है. हाइड्रोजन और कार्बन मोनोऑक्साइड के मिश्रण को सिनगैस यानी सिथेंसिस गैस कहा जाता है. इसका इस्तेमाल डीजल और मीथेन बनाने में किया जा सकता है. सिथेंसिस गैस पेड़ पौधे भी छोड़ते हैं. प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में पौधे सूर्य की रोशनी की मदद से कार्बन डाईऑक्साइड और जमीन से सोखे पानी को कार्बोहाइड्रेट्स में बदलते हैं. प्रोटोटाइप सोलर डिवाइस भी इसी क्रिया को दोहराने की कोशिश है. इस मशीन से

फिलहाल 20 फीसदी ईंधन बनने की गुंजाइश है. लेकिन कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेकनोलॉजी की प्रोफेसर सोसिनो इस खोज को कामयाब बताती हैं. वह कहती हैं, पहला प्रयोग है जिसमें प्रकाश के फोटोन को रिएक्टर में डाला गया और रसायनिक क्रिया सही ढंग से होती चली गई. वैज्ञानिकों का कहना है कि उत्तरी ध्रुवों और दक्षिणी ध्रुवों में ये मशीनें लगाकर काफी ईंधन हासिल किया जा सकता है.

कचरे से साफ हो सकेगा प्रदूषित जल

खराब हो चुकी बैटरियों का कचरा पर्यावरण को नुकसान पहुंचाता है. भारतीय वैज्ञानिकों ने बेकार बैटरियों में मौजूद पदार्थों के उपयोग से एक नया उत्पाद विकसित किया है, जो बैटरियों के कचरे के निपटारे के साथ-साथ प्रदूषित जल के शोधन में भी मददगार हो सकता है. पशुपालन उद्योग से निकलने वाले प्रदूषित जल में मौजूद टायलोसिन और पी-क्रेसॉल के अवशेष पर्यावरण को नुकसान पहुंचाते

हैं. जल में मौजूद इन अवशेषों के शोधन में कैब-मोएक के दानों को विशेष रूप से उपयोगी पाया गया है. इस अध्ययन से जुड़े शोधकर्ताओं में भारत के अलावा अमेरिका और दक्षिण कोरिया के वैज्ञानिक शामिल थे. मुर्गीपालन और सुअरपालन उद्योग में ग्रोथ-एजेंट के रूप में टायलोसिन का मेक्रोलाइड एंटीबायोटिक के रूप में उपयोग विशेष रूप से बढ़ा है. इसे बनानेवाले कारखानों से निकले अपशिष्टों को जलस्रोतों में बहाने के कारण उनमें टायलोसीन पाया जाता है.इसी तरह जानवरों के मल और धुलाई से निकले दूषित पानी में भी कैंसर के लिए जिम्मेदार पी-क्रसॉल नामक पदार्थ मौजूद होता है. खराब बैटरियों से निकाले गए मैंगनीज-ऑक्साइड, एक्टिवेटेड कार्बन और कैल्शियम अल्जिनेट को मिलाकर कैब-मोएक के दाने बनाए गए हैं. जल में मौजूद इन अवशेषों के शोधन में कैब-मोएक के दानों को विशेष रूप से उपयोगी पाया गया है. कैब-मोएक दानों के उपयोग से दस घंटे में जल में मौजूद इन प्रदूषकों को पूरी तरह हटाया जा सकता है. वैज्ञानिकों ने इन दानों के भौतिक और रासायनिक गुणों का परीक्षण करने पर पाया है कि पाँच बार उपयोग करने के बावजूद प्रदूषक हटाने की इनकी क्षमता कम नहीं होती. अपशिष्ट जल की उपचार प्रक्रिया के दौरान उसमें उपस्थित जैविक या विषाक्त पदार्थों को हटाने के लिये दानेदार एक्टिवेटेड कार्बन का उपयोग किया जाता है. एक्टिवेटेड कार्बन में अन्य अवशोषक पदार्थों को मिलाकर इसकी सोखने की क्षमता में सुधार हो सकता है.

स्मार्टफोन से कैंसर का खतरा

स्मार्टफोन में मौजूद रेडियेशन की वजह से आजकल कैंसर का खतरा बेहद बढ़ गया है, इसका रेडियेशन हमारे शरीर को बेहद तेजी से अटैक करता है. यह रेडियेशन सबसे पहले हमारे हार्ट को नुकसान पंहुचाता है, इसलिए आजकल देखा गया है कि लोगों को बेहद कम उम्र में ही हार्ट-अटैक जैसी समस्या हो रही है. और आंकड़े बताते है कि जब से स्मार्टफोन का अविष्कार हुआ है तब से हार्ट से संबंधित बीमारियां भी बढ़ती जा रही हैं. स्मार्टफोन में सबसे ज्यादा प्रयोग फोटो, वीडियो और चैटिंग का होता है, ऐसे में इसकी तेज रोशनी वाली स्क्रीन और तकनीकें आपकी आंखों की रोशनी के लिए बेहद खतरनाक हो सकता है. इसकी आइरिस अधिक होने और फॉन्ट साईज के कारण आपकी आंखों में तकलीफ हो सकती है. यंहा तक कि इसके ज्यादा

इस्तेमाल से आंखों में धीरे-धीरे अंधेपन की समस्या हो जाती हैं. इसके शुरुआती लक्षण में आंखों के चारो ओर गोल दाने निकल आते हैं, बाद में उनमे से पानी बहने लगता है.कई लोगों को तेज म्युजिक में गाना सुनना बेहद पसंद होता है, इसके लिए वे हैडफोन का सहारा लेते हैं. ऐसा करने से धीरे-धीरे व्यक्ति के कानों के पर्दे कमजोर होने लगता है और कुछ समय बाद ये पर्दे फट जाते हैं, जिससे व्यक्ति सुनने में अक्षम हो जाता है. ये बिल्कुल सच है कि स्मार्टफोन की वजह से व्यक्ति चिड़चिड़ा हो जाता है, क्योंकि आजकल लोग स्मार्टफोन से इतना लगाव रखते हैं कि यदि उन्हें कोई दूसरा काम दे दिया जाए तो वो व्यक्ति तुरंत गुस्सा हो जाता है, खासकर तब जब वह स्मार्टफोन को इस्तेमाल

कर रहा होता है. इसका दुष्प्रभाव सबसे ज्यादा बच्चों पर पड़ता है.

देश की पहली कृत्रिम हृदय वाल्व

विज्ञान और प्रोद्योगिकी के क्षेत्र में नित नए अविष्कार हो रहे हैं. ऐसा ही एक नई खोज हार्ट के मरीजों के लिए की गई है. देश में पहली बार कृत्रिम हृदय वाल्व प्रौद्योगिकी लांच की गई है. बता दें कि ऐसे मरीजों के लिए जिन्हें उच्च

जोखिम है और वे ओपन हार्ट वाल्व रिप्लेसमेंट सर्जरी नहीं कराना चाहते, उनके लिए वैश्विक मेडिकल डिवाइस निर्माता मेरिल लाइफ साइंसेज ने मेक इन इंडिया पहल के तहत पहला स्वदेशी कृत्रिम एरोटिक वाल्व लांच किया है.ट्रांसकैथेटर एओर्टिक हार्ट वाल्व रिप्लेसमेंट (टीएवीआर) को श्मायवलश् ब्रांड नाम से बेचा जाएगा. इसे लगाने के लिए किसी जटिल सर्जरी की जरूरत नहीं होगी और डॉक्टर मरीज के फेमोरल आर्टरी (ग्रोइन क्षेत्र की बड़ी धमनी, जो पेट और जांघ के बीच होता है) के माध्यम से एक कैथेटर डालकर कृत्रिम हृदय वाल्व को लगा सकेंगे. यह वाल्व को बदलने के लिए ओपन हार्ट सर्जरी जैसी पारंपरिक प्रक्रिया की जगह पर इस्तेमाल की जा सकनेवाली पारंपरिक पद्धति है.

एम-डीएनए वाईज नाम से एक स्वास्थ्य सेवा

लोगों को अब उनके स्वास्थ्य के खतरों के बारे में जानकारी मिलना और भी आसान हो गया है. इसके लिए लोगों को अब किसी डॉक्टर या किसी और जगह जाकर जांच करवाने की जरूरत नहीं होगी बल्कि यह सब कुछ अब आपके घर पर उपलब्ध होगा. बता दें कि लोगों को उनके आहार और कसरत में बदलावों के चयन का निर्णय लेने में मदद करने के लिए इंडस हेल्थ प्लस ने हाल ही में एम-डीएनए वाईजश् नाम से एक स्वास्थ्य सेवा लॉन्च किया है. इस बारे में इंडस हेल्थ प्लस के संयुक्त प्रबंध निदेशक अमोल नायकवडी ने बताया कि, एम-डीएनए वाईज व्यक्ति के डीएनए के अनुसार उसके स्वास्थ्य को होने वाले खतरे व खाने और कसरत की आदतों, गुणविशेषों का विश्लेषण करती है. इससे लोगों को उनकी स्वास्थ्य जांच का नियोजन अपने व्यक्तिगत जरूरत के अनुसार करने में आसानी होती है और उस आधार पर वे एक सुरक्षित जीवनशैली का चयन कर सकते हैं. अब व्यक्ति खुद-ब-खुद विभिन्न रोगों की तरफ अपने शरीर के आने वाले जेनेटिक रुझान को समझ सकता है और जीवनशैली में बदलाव कर, आने वाले रोग को टाल भी सकता है. इंडस हेल्थ प्लस के नायकवडी ने कहा, विशेष स्वास्थ्य सेवाएं सुलभ और सस्ते दरों में उपलब्ध कराने के अपने लक्ष्य का अगला पड़ाव हमने डीएनए वाईज जांच के माध्यम से पार किया है. बता दें कि डीएनए वाईज जांच लार का नमूना देकर की जानेवाली एक बेहद आसान सी जांच है. खास बात यह है कि इस जांच को लोग घर बैठे आराम से खुद से ही कर सकते हैं. इसके लिए लोगों को एक फिक्स कीमत चुकानी होगी. फिलहाल इस पैकेज को पूरे भारत में 15500 रुपये की कीमत पर उपलब्ध कराया गया है.

ऊर्जा का स्रोत है कार्बन डाईऑक्साइड

वैज्ञानिकों ने एक ऐसे उत्प्रेरक की खोज की है, जो कार्बन डाईऑक्साइड को सिनगैस में बदलने की प्रणाली में सुधार ला सकता है. सिनगैस ऊर्जा का एक वैकल्पिक स्रोत है. अमेरिका के शिकागो स्थित यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनोइस के वैज्ञानिकों ने रासायनिक प्रक्रिया के दौरान कार्बन डाईऑक्साइड के इलेक्ट्रॉन कम करने या हस्तांतरण करने के लिए दो चरणों में होने वाली एक उत्प्रेरक प्रक्रिया का विकास किया है, जिसमें मोलिब्डेनम डाईसल्फाइड और आयनिक द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है. यह नई प्रक्रिया अवकरण (रिडक्शन) की दक्षता में सुधार करता है और लागत में कमी लाता है. क्योंकि पहले इस प्रतिक्रिया के दौरान महंगी धातुओं जैसे सोना या चांदी का इस्तेमाल किया जाता था. यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनोइस के मोहम्मद असादी ने कहा, इस उत्प्रेरक की सहायता से हम कार्बन डाइऑक्साइड को सीधे सिनगैस में अवकृत कर सकते हैं. इसके लिए महंगी गैसीकरण प्रक्रिया की जरूरत नहीं है. उल्लेखनीय है कि किसी अनन्य अवकरण प्रक्रिया में प्रतिक्रिया उत्पाद केवल कार्बन मोनोक्साइड होता है. जबकि नया उत्प्रेरक सिनगैस बनाता है, जो कार्बन मोनोऑक्साइड और हाइड्रोजन का मिश्रण है. मैकेनिकल और औद्योगिक इंजीनियरिंग के प्रोफेसर अमीन सलेही-खोजिन ने कहा, सिनगैस के उत्पादन के दौरान नए उत्प्रेरक की मदद से कार्बन मोनोऑक्साइड और हाइड्रोजन के अनुपात को भी आसानी से संतुलित किया जा सकता है. शोधकर्ताओं ने दावा किया है कि यह सचमुच में एक बड़ी खोज है, जिसके माध्यम से कार्बन डाईऑक्साइड द्वारा ऊर्जा के स्रोत का व्यापक पैमाने पर उत्पादन किया जा सकता है. यह अध्ययन पत्रिका शेंचर कम्यूनिकेशन में प्रकाशित हुआ है.

संजय गोस्वामी
एनआरबी, अणुशक्तिनगर, मुंबई

'वैज्ञानिक' पत्रिका में प्रकाशन के लिए मानक दिशानिर्देश

वस्तुपरक : वैज्ञानिक, राष्ट्रीय भाषा हिंदी में विज्ञान विषय पर प्रकाशित लेखों की तिमाही पत्रिका है. जिसका प्रकाशन 'हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद', मुंबई द्वारा किया जाता है. इसमें पर्यावरण, प्राकृतिक विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग, और परमाणु विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के शांतिपूर्ण उपयोग पर आधारित लेख शामिल हैं. इस पत्रिका में विभिन्न अनुभागों जैसे संपादकीय, शोध पत्र, समीक्षा लेख, लघु लेख, विज्ञान समाचार, अन्वेषण नोट, विज्ञान प्रश्नोत्तरी, भेंटवार्ता इत्यादि पर विज्ञान विशेषज्ञों, इंजीनियरों, विज्ञान शिक्षाविदों और छात्रों के लाभार्थ लेख प्रकाशित होते है.

टाइपस्क्रिप्ट : शोधपत्र/अन्य लेख (अधिकतमः 3000 शब्द) को मूल शोध निष्कर्षों को स्पष्ट और संक्षिप्त रूप में अभिव्यक्त किया जाए. सैद्धांतिक, तथ्य, प्रयोगात्मक विधियों, परिकल्पना, अवलोकन, गणना और क्षेत्रीय सर्वेक्षण के परिणामों की रिपोर्ट पर आधारित लेखों को वरीयता दी जाती है.

समीक्षा लेख (अधिकतमः 5000 शब्द): विशिष्ट विषय क्षेत्र में अद्यतन और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की जानकारी विशेषज्ञ द्वारा समीक्षा करने की उम्मीद की जाती है. विषय विशेषज्ञों के लेखों की समीक्षा भी संपादक द्वारा की जाती है.

लघु संचार लेख/ नोट्स (अधिकतमः 2000 शब्द) चल रहे अनुसंधान की प्रगति पर सामान्य रूप से संक्षिप्त रिपोर्ट या तकनीकी नोट या कोई एप्लिकेशन से संबंधित लेख होते है.

लेख प्रक्रिया शुल्क : 'वैज्ञानिक' हिंदी पत्रिका में प्रकाशन के लिए कोई शुल्क नहीं लिया जाता है. वास्तव में, हम 300 रुपये का भुगतान करते हैं.

साहित्यिक-चोरी (Plagiarism)

चेक/प्राथमिक जांचः

जमा की गयी पांडुलिपियों को मूल (ओरिजिनल)/ अप्रकाशित होना चाहिए. अगर पांडुलिपि में साहित्यिक चोरी स्वीकार्य सीमा से अधिक पाई जाती है तो कृति को संपादकीय बोर्ड द्वारा अस्वीकार कर दिया जाएगा. लेखक साहित्यिक चोरी/स्वयं-साहित्यिक संबंधित क़ानूनी एवं कॉपीराइट मुद्दों के लिए पूरी तरह जिम्मेदार होगा.

पांडुलिपियां जमा करना : पांडुलिपि को एम.एस. वर्ड (MS Word) यूनिकोड या पीडीएफ प्रारूप में प्रस्तुत की जानी चाहिए। यूनिकोड पांडुलिपि को ई-मेलः sampadakvaigyanik@gmail.com/cc: hvsp@barc.gov.in पर या डाक द्वारा भेजा जा सकता है.

पांडुलिपि को 12 फोंट, A4 प्रारूप (210 मिमी x 297 मिमी) तथा प्रत्येक किनारे पर 25 मिमी के मार्जिन के साथ प्रस्तुत करना चाहिए. कृति का लेखन की रिपोर्टिंग आम तौर पर तीसरे व्यक्ति में होनी चाहिए.

लेखक द्वारा प्रावरण पत्र/

घोषणा पत्र की अनिवार्य प्रस्तुतिः पांडुलिपि को प्रकाशित करने के समय लेखक को एक प्रावरण पत्र (covering letter) के साथ, प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना अनिवार्य है.

यह प्रमाणित किया जाता है कि 'वैज्ञानिक' पत्रिका में प्रकाशन के लिए प्रस्तुत'

नामक शीर्षक के तहत दी गई समस्त जानकारी, एक मौलिक (ओरिजिनल) रचना है और कहीं और प्रकाशन के लिए विचाराधीन/प्रस्तुत नहीं की गयी है.

मैं/हम आगे यह भी प्रमाणित करते हैं कि उचित उद्धरण के लिए उपर्युक्त संदर्भ दिया गया है और अन्य प्रकाशनों से कोई भी डेटा/तालिकाओं/आंकड़े/चित्र-बिना-आभार या लेखक की बिना अनुमति के उद्धृत नहीं किए गए हैं. इस लेख के सभी लेखकों की सहमति लेकर 'वैज्ञानिक' पत्रिका में प्रकाशित करने के लिए भेजा गया है. जिम्मेदार प्राधिकारियों द्वारा स्पष्ट रूप से मंजूरी दी गई है जहां कार्य किया गया था. सभी लेखकों के हस्ताक्षर और नाम.

लेख संरचना : शीर्षक : शीर्षकों का उपयोग सूचना-पुनर्प्राप्ति प्रणालियों में किया जाता है। शीर्षक संक्षिप्त और सूचनात्मक होने चाहिए जहां तक संभव हो, शब्द-संक्षेप और सूत्रों से बचें.

लेखक के नाम और संबद्धता

कार्यालय का पता : प्रत्येक लेखक के पूर्ण नामों को स्पष्ट रूप से बताएं और जांच लें कि सभी नामों की सही वर्तनी हैं। नाम के नीचे लेखकों के संबद्धता पते (जहां वास्तविक कार्य किया गया था) प्रस्तुत करें. सभी लेखकों के ई-मेल को इंगित करें.

पत्राचार लेखक : स्पष्ट रूप से सुनिश्चित करें कि प्रकाशन के सभी चरणों और प्रकाशन के बाद में भी पत्राचार कौन करेगा? पत्राचार लेखक का ई-मेल व पता दिया जाना चाहिए.

आलेख के अनुभाग और उप-अनुभागः परिभाषित वर्गों में अपने लेख को विभाजित करें प्रत्येक उपधारा को एक संक्षिप्त शीर्षक दिया गया है. प्रत्येक शीर्षक को अपनी अलग लाइन पर दिखना चाहिए

सार : एक संक्षिप्त सार आवश्यक है। सार संक्षेप में अनुसंधान का उद्देश्य, विधि और प्रमुख निष्कर्ष देना चाहिए. साथ ही, गैर-मानक या असामान्य संक्षेपों को टाला जाना चाहिए. लेकिन, शोध पत्रों के लिए लगभग 200 शब्दों का सार, समीक्षा लेखों के लिए लगभग 150 शब्द और शोध नोट्स और संक्षिप्त संचार के लगभग 100 शब्द कागज के साथ प्रदान किए जाने चाहिए.

कुंजीशब्द (Keywords) : भारतीय वर्तनी का उपयोग करके अधिकतम 6 कीवर्ड प्रदान करें, सामान्य और बहुवचन शब्दों और कई अन्य अवधारणाओं से बचें. 'और', 'के' व शब्द-संक्षेप से बचें. इन कीवर्ड को अनुक्रमण उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाएगा.

शोधपत्रों में सामान्यता निम्न अनुभाग होते हैं :

परिचय : कार्य का उद्देश्य का वर्णन और एक पर्याप्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत करें, विस्तृत साहित्य सर्वेक्षण या परिणामों के सारांश से बचें.

सामग्री और विधि : काम को पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति देने के लिए पर्याप्त विवरण प्रदान करें. पहले से ही प्रकाशित किए गए तरीकों को एक संदर्भ से सूचित किया जाना चाहिए. केवल उपयोग किये गए उपकरण, सॉफ्टवेयर, डेटा संग्रह विधि का उल्लेख किया जाना चाहिए.

चर्चा : काम के परिणामों के महत्व का पता लगाना चाहिए, उन्हें दोहराना नहीं चाहिए. एक संयुक्त परिणाम और चर्चा अनुभाग अक्सर उपयुक्त होता है व्यापक उद्धरणों और प्रकाशित साहित्य की चर्चा से बचें.

निष्कर्ष : अध्ययन के मुख्य अंश और परिणाम की उपयोगित संक्षिप्त निष्कर्ष अनुभाग में प्रस्तुत किए जा सकते हैं.

परिशिष्ट (Appendices) : यदि एक से अधिक परिशिष्ट हैं, तो उन्हें क और ख आदि के रूप में लिखा जाना चाहिए.

तालिकायें/आंकड़े/चित्रण : तालिकाओं को पूरक-पाठ में दी गई जानकारी को डुप्लिकेट नहीं करना चाहिए. संक्षिप्त शीर्षक के साथ तालिका में स्पष्ट रूप से संख्यात्मक क्रम में टेक्स्ट में निर्दिष्ट किया जाना चाहिए. कॉलम शीर्षकों को संक्षिप्त, बोल्ड और माप की इकाइयां कोष्ठकों में शीर्षकों के नीचे रखा जाना चाहिए. सभी तालिकायें और ग्राफ शीर्षक के साथ उपलब्ध होने चाहिए. सभी आंकड़े (चार्ट, चित्र, रेखा चित्र, और फोटोग्राफिक छवियां) उच्च गुणवत्ता की होनी चाहिए.

प्रतीकात्मक शब्दावली : लेख में प्रयुक्त गणितीय प्रतीकों और चिह्नों की शब्दावली दी जानी चाहिए. लेखक अपने क्षेत्रों में अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों द्वारा विकसित किसी भी मानक इकाई और प्रतीकों का अनुसरण कर सकते हैं. संपूर्ण लेख में संक्षिप्ताक्षरों की स्थिरता सुनिश्चित करें.

भाषा (उपयोग और संपादन) : कृपया अपने लेख के विषय को अच्छी हिंदी में लिखें (भारत सरकार या 'हिंदी

विज्ञान साहित्य परिषद' द्वारा मान्यता प्राप्त मानक वैज्ञानिक शब्दावली) और उद्धरणों में अंग्रेजी के तकनीकी शब्दों की अनुमति है. जमा करने से पहले, अपने लेख की वर्तनी की त्रुटियों को अच्छी तरह से जांचें. संपूर्ण लेख में तकनीकी शब्दावली में उचित व्याकरण का उपयोग करें. समीक्षा, आंकड़ों व अलंकारों का उचित उपयोग सुनिश्चित करें. दशमलव बिंदु (10.5) के उपयोग में संगतता रक्खे.

लेख में संदर्भ और उद्धरण : कृपया सुनिश्चित करें कि टेक्स्ट में दिए गए प्रत्येक संदर्भ, संदर्भ सूची में मौजूद हैं. उद्धरण में दिए गए किसी भी संदर्भ को पूर्ण रूप से दिया जाना चाहिए. पाठ में उद्धरण होना चाहिए जैसे [Devasagayam 2014], (मिश्रा 2015).या नीचे दिया गया सन्दर्भ नम्बर भी कोष्ठक () में दिया जा सकता है - जैसे (1) (2) इत्यादि.

अप्रकाशित परिणाम और व्यक्तिगत संचार संदर्भ सूची में उद्धृत नहीं करें. लेखक संबद्धता के साथ ही संदर्भ में डॉ., श्रीमती आदि का उपयोग न करें. संदर्भ सूची को वर्णानुक्रमिक क्रम में व्यवस्थित किया जाना चाहिए.

उदाहरणः 1. Devasagayam, T.P.A.; Tilak, J.C.; Boloor, K.K.; Sane, K.S.; Ghaskadbi, S.S.; Lele, R.D. (2014) Free radicals and antioxidants in human health: Current status and future prospects; Journal of Association of Physicians of India , Vol. 52 (10) , October 2004, Pages 794-804

2. मिश्रा, हृषीकेश (2015) रेडियो रासायनिक संयंत्र में रासायनिक/ज्वलनशील सामग्री के भण्डारण में आकस्मित निःस्समन टैंक के फूटने का पर्यावरण पर प्रभाव , वैज्ञानिक, वर्ष-47 अंक-1, जन.-सित., पेज 16-19. http://www.barc.gov.in/hindi/publication/vaigaynik_2015-01-12.pdf

यह सामग्री क्रियेटिव कॉमन्स? एट्रीब्यूशन/शेयर-अलाइक लाइसेंस (Creative Commons Attribution 4.0 International License) के तहत उपलब्ध है. आप वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए सामग्री का उपयोग नहीं कर सकते हैं. अन्य शर्तों की जानकारी हेतु विस्तार से देखें: http://creativecommons.org/licenses/by/4.0/.

(This work is licensed under the Creative Commons Attribution 4.0 International License. To view a copy of this license,

visit http://creativecommons.org/licenses/by/4.0/.)

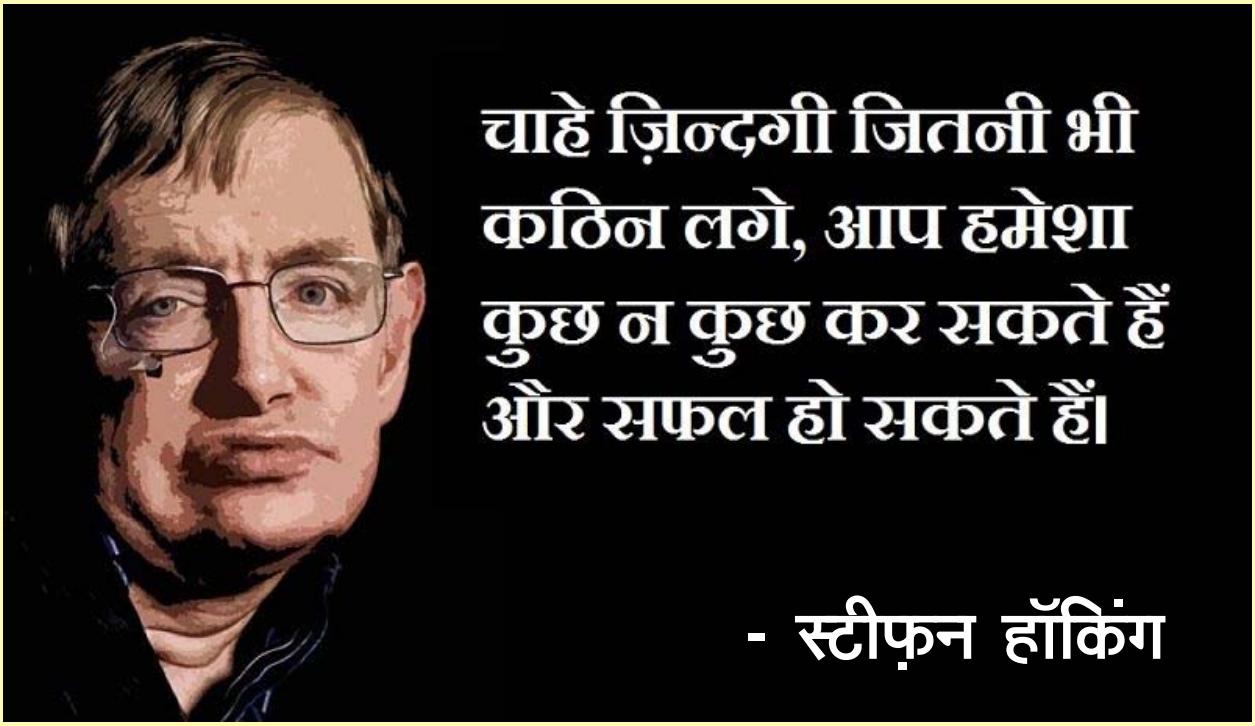

विज्ञान वर्ग पहेली - 11

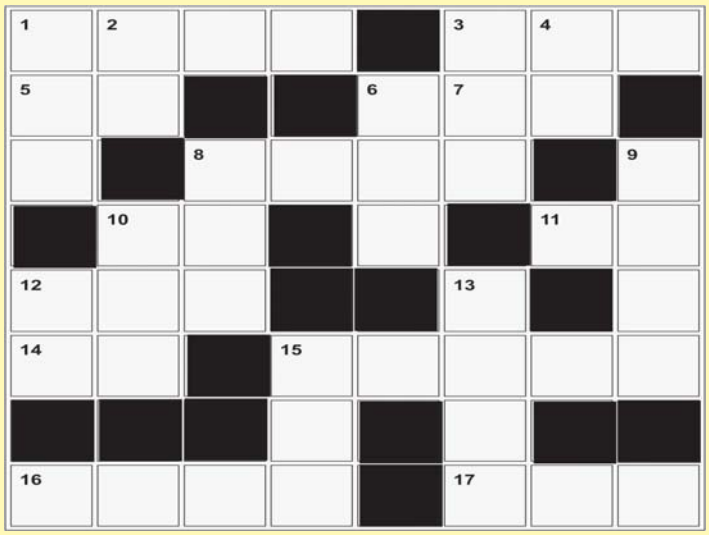

बांये से दांये

1. 900 का कोण (4)
3. बिगड़ना, रोग आदि (3)
5. घात 3 (2)
6. लोहे को सोना बनाने वाला काल्पनिक पत्थर (3)
8. कीचड़ (4)
10. साँप (2)
11. प्रमेय (रेखागणित) (2)
12. गति का बढ़ना (3)
14. गति (2)
15. प्रकाश किरण का लौटना (5)
16. टैंजेंट (4)
17. एक प्राचीन भारतीय गणितज्ञ (3)

ऊपर से नीचे

1. घना (3)
2. वजन की एक भारतीय इकाई जो यदि नौ होती तो राधा नाचती (2)
3. ऊपर से नीचे 1 का विलोम (3)
4. छींक, सहिजन का पेड़, एक घास (2)
6. पेड़, पैरों से पीने वाले (3)
8. शीशा जिसमें प्रतिबिम्ब दिखता है (3)
9. औसत (4)
10. जो वक्र न हो (3)
12. चमड़ी (2)
13. अन्दर की ओर से घूमा या मुड़ा हुआ; उत्तल का विलोम (4)
15. खाई (3)

श्री दीनानाथ सिंह
सचिव, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
मुंबई 400085

विज्ञान वर्ग पहेली -10 का सही हल

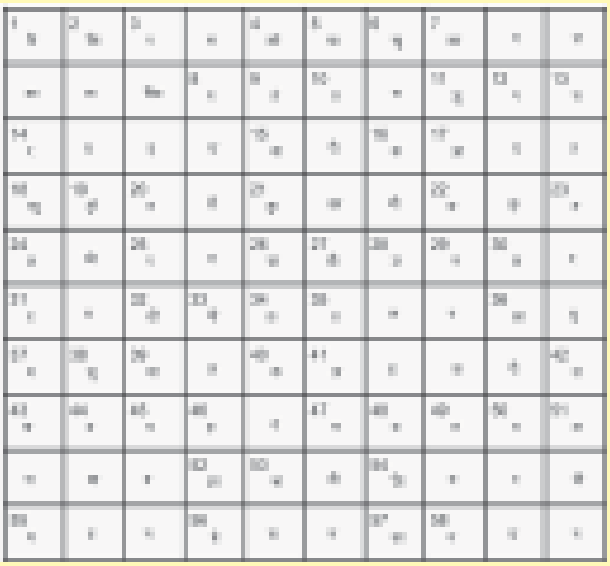

रचनाकारों से विशेष निवेदन

कृपया प्रकाशनार्थ पांडुलिपि तैयार करते समय संपादन की सुविधा के लिए निम्नलिखित निर्देशों का पालन करें :

1) (क) विभक्तियों को शब्दों से अलग लिखा जाये - उदाहरण - 'राम ने', 'मेज पर', 'लड़कों को'

(ख) सर्वनामों की सभी विभक्तियों को मिलाकर लिखा जाये -

उदाहरण - 'उसने'. 'मैंने', 'उनका', 'हमसे

(ग) जिन सर्वनामों के अंत में 'ही' अथवा 'ई' लगा हो उनकी विभक्तियों को अलग लिखा जाये -

2) पूर्वकालिक क्रियाओं के 'कर' को अलग लिखा जाये - **उदाहरण** - ' जा कर', 'आ कर', अन्यथा 'कर' मिलाकर लिखें.

3) संयुक्त क्रियाओं में दोनों अंशों को अलग-अलग लिखा जाये -

उदाहरण - 'आ गया', 'चल पड़ा', 'हो सका'

4) जिन भूतकालिक कृदंत क्रियाओं अथवा विशेषणों का अंत 'या' से होता है, उनके स्त्रीलिंग और बहुवचन रूपों में 'य' का ही प्रयोग किया जाये - उदाहरण - 'गया, गयी, गये', 'नया, नयी, नये', 'आया, आयी, आये','लाया, लायी, लाये', 'पाया, पायी, पाये', 'खाया, खायी, खाये', 'किया, किये' आदि.

5) 'हुआ' जैसी जिन क्रियाओं के अंत में 'आ' है उनके स्त्रीलिंग 'हुई' व बहुवचन 'हुए' के अनुसार होना चाहिए.

6) 'लिये/लिए' : लिये को लिया का बहुवचन रूप मानें और 'लिए' को विभिक्ति चिन्ह. 'चाहिये/चाहिए' : 'चाहिए' ही लिखा जाये.

7) एसा/ऐसा'' : 'ऐसा' लिखा जाये. 'दिखाई/दिखायी' : 'दिखाई' संज्ञा रूप मानें और 'दिखायी' भूतकालिक क्रिया (स्त्रीलिंग). उदाहरण - ' सांप दिखाई पड़ा', 'मैंने उसे पुस्तक दिखायी' इसी प्रकार 'पढ़ाई' और 'पढ़ायी' में भी अंतर करें.

8) आदरार्थ आज्ञा रूपों में संभावनार्थक क्रियाओं में 'ए' ही लिखा जाये -

उदाहरण - 'आइए', 'खाइए', 'जाइए', 'समझिए, 'कीजिए' 'रखिए' आदि.

9) अनुस्वार और आनुनासिक ध्वनियां : 'संयुक्त व्यंजन' की अनुनासिक ध्वनि को 'अनुस्वार' के द्वारा दर्शाया जाना चाहिए -

वर्ग का प्रत्येक पंचम वर्ण यथा इ.('क' वर्ग), ञ ('च' वर्ग), ण ('ट' वर्ग), म ('प' वर्ग) तथा न ('त' वर्ग) अनुनासिक ध्वनियां हैं.

अनुस्वार स्थापन का नियम इस प्रकार है : जिस किसी अक्षर के आगे यदि उसी वर्ग की अनुनासिक ध्वनि है तो उसे अनुस्वार (बिंदी) से बदला जा सकता है :

उदाहरण - कंगन, अंक, व्यंजन, रंजन, ठंडा, डंडा, पंडित, कंपन, पंप, बंद, परंतु, किंतु, मृगांक, दंडित, संबंध, अंत आदि.

इस नियम का प्रयोग ध्यानपूर्वक करना चाहिए, अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है. जन्म, मान्य, समन्वय, सम्मति आदि शब्द वैसे ही रहेंगे.

10) एकवचन से बहुवचन - 'या' से 'ये', 'ए' नहीं. जैसे, रुपया - रुपये, हंसिया-हंसिये (हंसिए आदारार्थ आज्ञा रूप होगा)

11) संस्कृत के जो शब्द हिंदी में तत्सम रूप से प्रचलित हैं, उनमें 'य' का व्यवहार उचित हैं. जैसे, अस्थायी, बाजपेयी, उत्तरदायी आदि. इन्हें अस्थाई, बाजपेई, उत्तरदाई लिखना न तो व्याकरण सम्मत है और न व्यावहारिक.

12)चंद्र-बिंदु का प्रयोग - छपाई की सुविधा के लिए चंद्र-बिंदु की जगह अनुस्वार का प्रयोग किया जाये. जैसे अंधा, आंख, अंगना, चांद, मां, पहुंचना, हां आदि.

13) संख्यां को अरैबिक (अंग्रेजी) में लिखा जाये - 1, 2,3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10

♦ 'वैज्ञानिक' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है. ♦ 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं.वि.सा.परिषद के पास सुरक्षित हैं. ♦ 'वैज्ञानिक' एवं हिं.वि.सा.परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा. ♦ 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिए उपयोग कर सकते हैं. परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री *'वैज्ञानिक' से साभार.*

वैज्ञानिक : डॉ जगदीश चंद्र बोस

जिन्होंने पौधों की भावनाओं को दी पहचान

पेड़-पौधों में जीवन सिद्धांत के प्रतिपादन में महत्वपूर्ण भूमिका, रेडियो और माइक्रोवेव ऑप्टिक्स के क्षेत्र में अग्रणी भारतीय वैज्ञानिक प्रोफेसर जगदीश चंद्र बोस बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे जिन्होंने रेडियो और माइक्रोवेव ऑप्टिक्स के अविष्कार तथा पेड़-पौधों में जीवन सिद्धांत के प्रतिपादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. उनके प्रतिभा का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि भौतिक वैज्ञानिक होने के साथ-साथ वो जीव वैज्ञानिक, वनस्पति वैज्ञानिक, पुरातत्वविद और लेखक भी थे जे. सी. बोस. ऐसे समय पर कार्य कर रहे थे जब देश में विज्ञान शोध कार्य लगभग नहीं के बराबर था. ऐसी परिस्थितियों में भी बहुमुखी प्रतिभा के धनी बोस ने विज्ञान के क्षेत्र में मौलिक योगदान दिया. रेडियो विज्ञान के क्षेत्र में उनके अद्वितीय योगदान और शोध को देखते हुए 'इंस्टिट्यूट ऑफ इलेक्ट्रिकल एंड इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियर' (आईईईई) ने उन्हें रेडियो विज्ञान के जनकों में से एक माना. हालांकि रेडियो के अविष्कारक का श्रेय इतालवी अविष्कारक मार्कोनी को चला गया परन्तु बहुत से भौतिक शास्त्रियों का कहना है कि प्रोफेसर जगदीश चंद्र बोस ही रेडियो के असली अविष्कारक थे. जे.सी. बोस के अनुसंधानों और कार्यों का उपयोग आने वाले समय में किया गया. आज का रेडियो, टेलिविज़न, भुतलीय संचार रिमोट सेन्सिग, रडार, माइक्रोवेव अवन और इंटरनेट, जगदीश चन्द्र बोस के कृतज्ञ हैं.

प्रारंभिक जीवन : आचार्य जे.सी. बोस का जन्म 30 नवम्बर, 1858 को मेमनसिंह के ररौली गांव में हुआ (जो अब बांग्लादेश में है). उनके पिता भगबान चन्द्र बोस ब्रिटिश इंडिया गवर्नमेंट में विभिन्न कार्यकारी और दण्डाधिकारीय पदों पर कार्यरत रहे. जगदीश के जन्म के समय उनके पिता फ़रीदपुर के उप मजिस्ट्रेट थे और यहीं पर बोस ने अपना आरंभिक बाल्यकाल बिताया. उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा गाँव के एक पाठशाला से आरंभ की जिसे उनके पिता ने स्थापित किया था. उनके पिता बड़ी आसानी से अपने पुत्र को स्थानीय अंग्रेजी स्कूल में भेज सकते थे परन्तु वह चाहते थे कि उनका बेटा मातृभाषा सीखे और अंग्रेजी भाषा सीखने से पहले अपनी संस्कृति के बारे में जाने. 1869 में उन्हें सेंट जेवियर्स कॉलेज में दाखिला मिल गया जो एक सेकण्डरी स्कूल और कालेज दोनों ही था. 1879 में बोस कलकत्ता विश्वविद्यालय के भौतिक-विज्ञान ग्रुप में बीए परीक्षा पास कर चिकित्सा-शास्त्र पढ़ने लंदन रवाना हो गए परन्तु खराब स्वास्थ्य के कारण जनवरी 1882 में वो लंदन छोड़ कर कैम्ब्रिज आ गए जहां नेचुरल साइंस पढ़ने के लिए उन्होंने क्राइस्ट कालेज में दाखिला लिया.

कैरियर : वर्ष 1884 में बोस ने नेचुरल साइंस में दूसरी श्रेणी में कला स्नातक की और लंदन यूनिवर्सिटी से विज्ञान स्नातक की डिग्री भी प्राप्त की. भारत वापस आकर उन्होंने कोलकाता के प्रैसीडेंसी कॉलेज में 1885 में दाखिला लिया. वह पहले भारतीय थे जिनकी नियुक्ति प्रैसीडेंसी कॉलेज में भौतिक-विज्ञान प्रोफेसर के रूप में हुई. हालाँकि उनकी नियुक्ति तो हो गयी थी पर उन्हें उस पद के लिए निर्धारित वेतन से आधे वेतन पर रखा गया. इस भेदभाव के विरोध में उन्होंने वेतन लेने से इनकार कर दिया और तीन साल बिना वेतन लिए अध्यापन कार्य करते रहे. अंततः ब्रिटिश प्रबंधन को उनकी प्रतिभा का एहसास हुआ और उनकी नियुक्ति को पूर्व व्याप्ति से स्थायी करते हुए तीन साल का वेतन एकमुश्त दे दिया.

वर्ष 1894 के बाद उन्होंने अपने आप को पूर्ण रूप से अनुसन्धान और प्रयोगों में समर्पित कर दिया. उन्होंने प्रेसीडेंसी कॉलेज में बाथरूम से सटे एक छोटे से बाड़े को प्रयोगशाला में बदल दिया. यहाँ उन्होंने अपवर्तन, विवर्तन और ध्रुवीकरण से जुड़े प्रयोगों को अंजाम दिया. उनको 'वायरलेस टेलीग्राफी' का आविष्कारक कहना गलत नहीं होगा क्योंकि मार्कोनी के आविष्कार के पेटेंट (1895) से एक साल पहले ही बोस ने अपने अविष्कार/शोध का सार्वजनिक रूप से प्रदर्शन किया था.

उन्होंने एक बेहद संवेदनशील 'कोहरर' (एक ऐसा यन्त्र जो रेडियो तरंगों का ज्ञान कराता है) का निर्माण किया. उन्होंने यह पाया कि एक लंबी अवधि तक लगातार प्रयोग किये जाने पर कोहरर की संवेदनशीलता कम हुई और कुछ अंतराल के बाद प्रयोग किये जाने पर उसकी संवेदनशीलता वापस आ जाती है. इससे यह निष्कर्ष निकला कि धातुओं में भी भावना और स्मृति है.

जे.सी. बोस ऐसे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने एक ऐसे यंत्र का निर्माण किया जो सूक्ष्म तरंगे पैदा कर सकती थीं और जो 25 मिलिमीटर से 5 मिलिमीटर तक की थीं उनका यंत्र इतना छोटा था कि उसे एक छोटे बक्से में कहीं भी ले जाया जा सकता था. उन्होंने दुनिया को उस समय एक बिल्कुल नए तरह की रेडियो तरंग दिखाई जो कि 1 सेंटीमीटर से 5 मिलिमीटर की थी जिसे आज माइक्रोवेव्स या सूक्ष्म तरंग कहा जाता है.

जगदीश चंद्र बोस बाद में धातुओं और पौधों के अध्ययन में लग गए. उन्होंने अपने प्रयोगों के माध्यम से ये दर्शाया कि पौधों में भी जीवन है. उन्होंने पौधों की नब्ज को दर्ज करने के लिए एक उपकरण का आविष्कार किया. इस प्रयोग के अंतर्गत उन्होंने एक पौधे को जड़ सहित एक बर्तन में डाला जो ब्रोमाइड (जहर) से भरा था. इसके बाद यह पाया गया कि पौधे की नाड़ी की धड़कन, अस्थिर होकर बढ़ने लगी. जल्द ही, धड़कन बहुत तेज़ हो गयी और फिर स्थिर. जहर के कारण पौधे की मृत्यु हो गई थी.

वर्ष 1915 में प्रेसिडेन्सी कॉलेज से सेवानिवृत्ति के पश्चात उन्होंने अपना शोध कार्य जारी रखा और धीरे-धीरे अपनी प्रयोगशाला को अपने घर पर स्थानान्तरित कर दिया. बोस इंस्टिट्यूट की स्थापना 30 नवम्बर 1917 में हुई और आचार्य जगदीश चन्द्र बोस अपने जीवन के अंतिम समय तक इसके निदेशक रहे.

आचार्य बोस का देहान्त 3 नवम्बर 1937 को बंगाल प्रेसीडेंसी के गिरिडीह (अब झारखण्ड में) में हुआ. मृत्यु के समय उनकी आयु 78 साल थी.

सम्मान : उन्होंने सन् 1896 में लंदन विश्वविद्यालय से विज्ञान में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की.

- वह सन् 1920 में रॉयल सोसायटी के फैलो चुने गए.
- इंस्टिट्यूट ऑफ इलेक्ट्रिकल एण्ड इलेक्ट्रोनिक्स इंजीनियर्स ने जगदीष चन्द्र बोस को अपने 'वायरलेस हॉल ऑफ फेम' में सम्मिलित किया.
- वर्ष 1903 में ब्रिटिश सरकार ने बोस को कम्पेनियन ऑफ़ दि आर्डर आफ दि इंडियन एम्पायर (CIE) से सम्मानित किया.
- वर्ष 191 में उन्हें कम्पैनियन ऑफ़ द आर्डर ऑफ दि स्टर इंडिया (CSI) से विभूषित किया गया.
- वर्ष 1917 में ब्रिटिश सरकार ने उन्हें नाइट बैचलर की उपाधि दी.

संकलनःअश्विनीकुमार मिश्र

*'वैज्ञानिक' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है. * वैज्ञानिक में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिका हिं.वि.सा.परिषद के पास सुरक्षित हैं. * 'वैज्ञानिक' एवं हिं.वि.सा.परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा. * 'वैज्ञानिक' में प्रकाशि सामग्री का आप बिना अनुमति लिए उपयोग कर सकते हैं. परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार.

वैज्ञानिक के पुराने अंक वेबसाइट http://www.barc.gov.in/hindi/publication/index_sc_a.html पर उपलब्ध.

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद्, भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र ट्रॉम्बे, मुंबई 400085 के लिए श्री मानीष कुमार द्वारा सम्पादित,
मुख्य व्यवस्थापक : श्री.दीनानाथ सिंह द्वारा प्रकाशित. मुद्रक-निर्भय पथिक : Email:nirbhaypathik@gmail.com, फोनः 24153784,98690 22787